Postal Reg. No. M.P./Bhopal/4-340/2017-19
R.N.I.No. 51966/1989,ISSN 2455-2399
Date of Publication 15th February 2019
Date of posting 15th & 20th February 2019

फरवरी 2019 • वर्ष 31 • अंक 02 • मूल्य ₹ 40

इलेक्ट्रॉनिकी आपके लिए

इलेक्ट्रॉनिक्स, कम्प्यूटर विज्ञान एवं नई तकनीक की पत्रिका

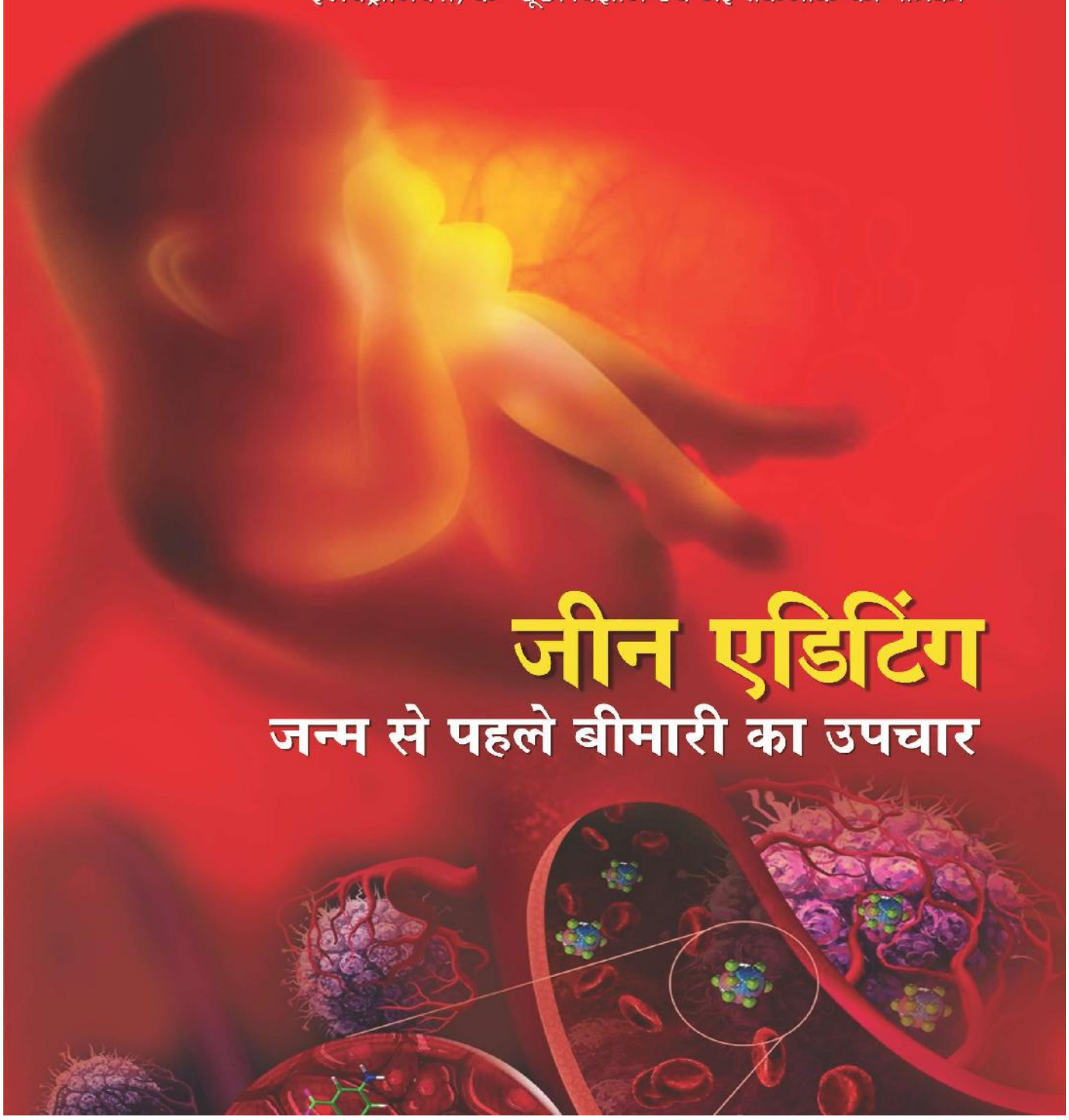

जीन एडिटिंग

जन्म से पहले बीमारी का उपचार

RNI No. 51966/1989
ISSN 2455-2399
www.electroniki.com
फरवरी 2019
वर्ष 31
अंक 2

इलेक्ट्रॉनिकी आपके लिए

इलेक्ट्रॉनिक्स, कम्प्यूटर विज्ञान एवं नई तकनीक की पत्रिका

राष्ट्रीय राजभाषा शील्ड सम्मान, रामेश्वर गुरु पुरस्कार, भारतेन्दु पुरस्कार तथा सारस्वत सम्मान से सम्मानित

सलाहकार मण्डल

शरदचंद्र बेहार, डॉ. वि.दि. गर्दे, देवेन्द्र मेवाड़ी, डॉ. मनोज कुमार पटैरिया, डॉ. संध्या चतुर्वेदी, प्रो. विजयकांत वर्मा, डॉ. रविप्रकाश दुबे, डॉ. अशोक कुमार ग्वाल, डॉ. आर.एन.यादव, डॉ. सुनील कुमार श्रीवास्तव, प्रो. राकेश कुमार पाण्डेय, प्रो. अमिताभ सक्सेना

संपादक

संतोष चौबे

कार्यकारी संपादक

विनीता चौबे

उप-संपादक

पुष्पा असिवाल

सह-संपादक

मोहन सगोरिया, रवीन्द्र जैन, मनीष श्रीवास्तव

संस्थागत सहयोग

गौरव शुक्ला, डॉ. डी.एस.राघव, डॉ. विजय सिंह, डॉ. सीतेश सिन्हा, रवि चतुर्वेदी, डॉ. मुनीष गोविंद, डॉ. अनुराग सीठा, डॉ. सत्येन्द्र खरे, संतोष शुक्ला

राज्य प्रसार समन्वयक

शशिकांत वर्मा, लातूर सिंह वर्मा, लियाक़त अली खोखर, राजेश शुक्ला, दर्शन व्यास, शलभ नेपालिया, अंबरीष कुमार, ए.के.सिंह, निशांत श्रीवास्तव, रजत चतुर्वेदी, एम. किरण कुमार, बिनीस कुमार, कुमार अभिषेक, आबिद हुसैन भट्ट, दलजीत सिंह, अजीत चतुर्वेदी, अमिताभ गांगुली, नरेन्द्र कुमार

क्षेत्रीय प्रसार समन्वयक

राजीव चौबे, जितेन्द्र पांडे, लुकमान मसूद, आर.के. भारद्वाज, प्रवीण तिवारी, अरुण साहू, अभिषेक अवस्थी, विजय श्रीवास्तव, के.आई. जावेद, अमृतेष कुमार, योगेश मिश्रा, मनीष खरे, कुम्भलाल यादव, सचिन जैन, रूपेश देवांगन, राहुल चतुर्वेदी, नीरज नागर, संतोष उपाध्याय, असीम सरकार

समन्वयक प्रचार एवं विज्ञापन

राजेश पंडा

आवरण एवं डिजाइन

वंदना श्रीवास्तव, अमित सोनी

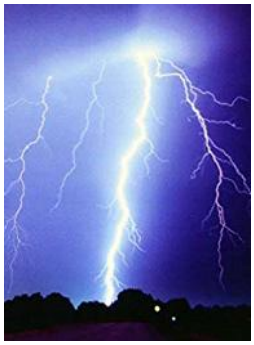

'मैं प्रकृति का एक हिस्सा हूँ। बिजली की चमक या पर्वत शृंखला जैसी प्राकृतिक वस्तुओं की भांति, मैं भी अपने निश्चित समय तक जीवित रहूंगा और फिर मिट जाऊंगा। इस संभावना से मुझे भय नहीं लगता, क्योंकि मेरे कुछ कार्य मेरे साथ नहीं मिटेंगे'।

– जे.बी.एस.हाल्डेन

इलेक्ट्रॉनिकी आपके लिए 295

इलेक्ट्रॉनिक्स, कम्प्यूटर विज्ञान एवं नई तकनीक की पत्रिका

क्रम

विज्ञान लेख

भारतीय अंतरिक्ष कार्यक्रम की पूर्व पीठिका
● शुकदेव प्रसाद/05

विज्ञान संचार की सामाजिक उपयोगिता
● एम.एल.मुद्गल/10

जिन्दगी को दूभर बनाती ये दुर्लभ बीमारियाँ
● डॉ. कृष्ण कुमार मिश्र/13

जलवायु परिवर्तन समस्या और समाधान
डॉ.दिनेश मणि/16

मरुस्थल दुश्वारियों के साथ अनोखा भी
डॉ. मनीष मोहन गोरे/19

तकनीकी लेख

जीन एडिटिंग जन्म से पहले बीमारी का उपचार
● प्रमोद भार्गव/22

अब गुब्बारे करेंगे सैटेलाइट का काम
● विजन कुमार पाण्डेय/25

इंटरनेट कनेक्टिविटी के लिए गेम चेंजर है जीसैट-11
● शशांक द्विवेदी/28

केप्लर ने दिखाई ब्रह्मांड की अनदेखी दुनिया
● प्रदीप/30

हमारे वैज्ञानिक

अकिर्तित भारतीय वैज्ञानिक सितारे
येल्लाप्रागदा सुब्बाराव
● डॉ.कपूरमल जैन/32

कॅरियर

पॉलीमर इंजीनियरिंग
● संजय गोस्वामी/37

विज्ञान इस माह

जब दिखेगा सुपरमून और बुद्ध ग्रह
● इरफान ह्यूमन/40

विज्ञान कविताएँ

एक चेहरा समूचा, गोल पत्थर, मुझे मेरे भीतर
छिपी रोशनी दिखाओ, दिशाएँ
नरेश सक्सेना/46

संस्थागत समाचार

रबिन्द्रनाथ टैगोर विश्वविद्यालय, भोपाल,
सी.वी.रामन विश्वविद्यालय, बिलासपुर/48

पत्र व्यवहार का पता

इलेक्ट्रॉनिकी आपके लिए

आईसेक्ट लिमिटेड, स्कोप कैम्पस, एन.एच.–12, होशंगाबाद रोड, मिसरोद, भोपाल–462047

फोन : 0755-2700466 (डेस्क), 2700400 (रिसेप्शन)

e-mail : electroniki@electroniki.com, website : www.electroniki.com वार्षिक शुल्क : 480/- प्रति अंक : 40/-

'इलेक्ट्रॉनिकी आपके लिए' में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार संबंधित लेखक के हैं। उनसे संपादक की सहमति होना आवश्यक नहीं है।

सभी विवादों का निबटारा भोपाल अदालत में किया जायेगा।

स्वामी, आईसेक्ट लिमिटेड के लिये प्रकाशक व मुद्रक सिद्धार्थ चतुर्वेदी द्वारा आईसेक्ट पब्लिकेशन्स, 25 ए, प्रेस कॉम्प्लेक्स, जोन-1, एम.पी.नगर, भोपाल (म.प्र.) से मुद्रित व आईसेक्ट लिमिटेड, स्कोप कैम्पस एन.एच.-12 होशंगाबाद रोड, मिसरोद, भोपाल (म.प्र.) से प्रकाशित। संपादक- संतोष चौबे।

भारतीय अंतरिक्ष कार्यक्रम की पूर्व पीठिका

शुकदेव प्रसाद

समकालीन विज्ञान लेखकों में शुकदेव प्रसाद का नाम अग्र पंक्ति में शुमार है। वे पिछले चार दशकों से विज्ञान लेखन कर रहे हैं। देश विदेश में वे अपने विज्ञान लेखन के लिए उन्हें कई पुरस्कार और सम्मान प्रदान किये गये हैं। सोवियत भूमि नेहरू पुरस्कार से सम्मानित वे एक मात्र भारतीय विज्ञान लेखक हैं। कई विज्ञान किताबों की रचना के साथ ही उन्होंने विज्ञान ग्रंथों और संचयन का संपादन किया है। शुकदेव प्रसाद इलाहाबाद में रहते हैं।

वस्तुतः डॉ. विक्रम साराभाई भारत में अंतरिक्ष अनुसंधान के पर्याय कहे जा सकते हैं। डॉ. साराभाई की विकास यात्रा भारतीय अंतरिक्ष विज्ञान की विकास यात्रा है। इस पृष्ठभूमि को समझने के लिए हमें विक्रम साराभाई के जीवन पर दृष्टिपात करना होगा।

12 अगस्त, 1919 को अहमदाबाद के एक उद्योगपति परिवार में विक्रम साराभाई का जन्म हुआ था। पिता का नाम अम्बालाल साराभाई था और माँ थीं- श्रीमती सरलादेवी साराभाई। गुजरात कॉलिज से विशेष योग्यता के साथ इंटर की परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद साराभाई उच्च अध्ययन के लिए कैम्ब्रिज चले गए। उस समय विक्रम साराभाई की उम्र 18 वर्ष की थी। कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय से विक्रम ने 1940 में भौतिकी और गणित के साथ ट्रिपोस परीक्षा उत्तीर्ण की और नाभिकीय भौतिकी में स्नातकोत्तर अध्ययन प्रारंभ किया। चूँकि उस समय द्वितीय विश्व युद्ध शुरू हो चुका था, अतः विक्रम 1940 में भारत वापस आ गए। यहाँ आकर प्रख्यात विज्ञानी प्रो.सी.वी.रामन् के साथ बंगलूर स्थित 'इंडियन इंस्टिट्यूट ऑफ सायंस' में उन्होंने कॉस्मिक किरणों' पर शोध कार्य आरंभ किया।

यह कहना अप्रासंगिक न होगा कि वर्ष 1942-43 में भी, विक्रम साराभाई अहमदाबाद में 'भौतिक अनुसंधान प्रयोगशाला' स्थापित करने की योजना का प्रारूप बना रहे थे। और जब वे वैज्ञानिक विचार-विमर्श के लिए पूना आए, तो उन्होंने प्रयोगशाला की भावी रूप रेखा के बारे में डॉ. के.आर. रामानाथन् से बातचीत की। वर्ष 1945 में उनके अभिभावकों ने 'कर्मक्षेत्र एजूकेशनल फाउंडेशन' की स्थापना की जिसका मकसद था विज्ञान के क्षेत्र में उच्च अनुसंधान करना और शैक्षणिक क्रिया-कलापों के लिए सहायता और प्रोत्साहन प्रदान करना।

सन् 1945 में जब दूसरा महायुद्ध समाप्त हो गया तो साराभाई कैम्ब्रिज चले गए और 1946 में कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय में पी.एच-डी. डिग्री के लिए अपनी थीसिस जमा कर दी। उनकी थीसिस का शीर्षक था- 'कॉस्मिक रेज इन्वेस्टीगेशन्स इन ट्रोपिकल लैटीट्यूड्स'। यह थीसिस बंगलौर और कश्मीर क्षेत्र में उनके द्वारा किए गए अध्ययनों पर आधारित थी। 1947 में विश्वविद्यालय ने उन्हें पी.एच-डी. की डिग्री दे दी और वे स्वदेश लौट आए।

भौतिक अनुसंधान प्रयोगशाला की स्थापना

भारत लौटते ही उन्होंने अहमदाबाद में भौतिक अनुसंधान प्रयोगशाला की स्थापना के काम में बड़ी दिलचस्पी ली। यद्यपि कॉस्मिक किरणों पर अनुसंधान के लिए उनके पास 'रिट्रीट', साहिब बाग में, एक प्रयोगशाला पहले से ही थी फिर भी एक बृहतराष्ट्रीय प्रयोगशाला की स्थापना का सपना अरसे से वह देख रहे थे। चूँकि रामानाथन् की दिलचस्पी वायुमंडलीय भौतिकी, भू-चुम्बकत्व और भू-सौर सम्बन्धों में थी, अतः इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए डॉ। साराभाई ने उनसे अपनी भावी प्रयोगशाला को ज्वाइन करने की पेशकश की और यह भी कि कब वे इस नई टोली में अपने को शामिल कर सकेंगे। डॉ. रामानाथन् ने साराभाई को स्वीकृति दे दी और यह भी कहा कि भारतीय

विक्रम साराभाई

अहमदाबाद के एक उद्योगपति परिवार में 12 अगस्त, 1919 को विक्रम साराभाई का जन्म हुआ था। प्रारंभिक पढ़ाई वहीं हुई तथा सन् 1939 में कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय से भौतिकी की ट्रिपोस परीक्षा उत्तीर्ण की। इसी समय द्वितीय विश्वयुद्ध शुरू हो गया था, अतः साराभाई भारत वापस आ गए और बेंगलूर स्थित 'इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ साइंस' में सर रामन् के साथ शोध-कार्य करने लगे।

द्वितीय विश्वयुद्ध की समाप्ति पर वे फिर कैम्ब्रिज गए और वहां से सन् 1947 में पी-एच.डी. की उपाधि प्राप्त की।

कैम्ब्रिज से लौटकर अहमदाबाद में आपने 'भौतिक अनुसंधानशाला' की स्थापना की। इसके प्रथम निदेशक थे डॉ.के.आर. रामानाथन्। पहले तो डॉ. साराभाई कास्मिक किरण शोध के प्राध्यापक ही थे, किन्तु सन् 1965 में निदेशक के रूप में अपने अनुसंधानशाला की सेवाएँ आरंभ की।

इस संस्था ने गुलमर्ग में स्थापित 'कॉस्मिक अनुसंधान केंद्र' की जिम्मेदारी स्वयं ले ली। इतनी अधिक ऊँचाई पर स्थापित यह केन्द्र विश्व में सर्वप्रथम है। डॉ. साराभाई ने कोडाई कैनाल (तमिलनाडु) तथा त्रिवेन्द्रम (केरल) में भी ऐसे केन्द्र स्थापित किए।

स्वतंत्र भारत में अंतरिक्ष अनुसंधान का सपना डॉ. साराभाई ने ही देखा। उनके द्वारा स्थापित संस्थाएँ हैं- थुंबा, अहमदाबाद, श्रीहरिकोटा, आर्वी के भारतीय अंतरिक्ष संशोधन कार्य केंद्र। थुंबा और श्रीहरिकोटा में रॉकेट प्रक्षेपण केन्द्र भी आपने ही स्थापित किया। अंतिम क्षण तक साराभाई विज्ञान-सेवा में रत थे। सन् 1971 की दिसम्बर में थुंबा केन्द्र में वह रॉकेट छोड़ने का मार्ग दर्शन कर रहे थे। 29 दिसम्बर की रात सोये, तो फिर नहीं उठे। संयोगवशात् यह वर्ष डॉ. साराभाई का जन्मशती वर्ष है। इस अवसर विशेष पर आइए, संकल्प लें और उनके सपनों में रंग भरें। खासकर भारत की तरुणाई से हमें बहुत आशाएं हैं।

गलतियों से सीखें

बात सन् 1948 की है। अहमदाबाद के महात्मा गाँधी विज्ञान संस्थान में दो विद्यार्थी प्रयोगशाला में कुछ प्रयोग कर रहे थे। प्रयोग करते समय अधिक विद्युत प्रवाहित हो जाने से यंत्र जल गया। दोनों विद्यार्थी डर गए। इसी बीच उधर ही उनके गुरु आते दिखाई पड़े। उनमें से एक विद्यार्थी बोला, 'वे आ रहे हैं, उन्हें बता दो।'

'मैंने यह नुकसान नहीं किया। अतः तुम स्वयं बता दो।' दूसरे ने तर्क किया।

तब तक गुरुजी करीब आ चुके थे। उन्होंने दोनों विद्यार्थियों का वार्तालाप सुन लिया था। पास आकर पूछा, 'क्या बात है?'

डरते-डरते एक विद्यार्थी ने जवाब दिया, 'विद्युत मोटर में एकाएक भारी विद्युत प्रवाहित हो जाने से वह जल गया है, सर!'

'बस इतना ही? उसकी चिंता नहीं। विद्यार्थी अध्ययन करते हैं, तब ऐसी घटनाएँ हुआ ही करती हैं। गलतियाँ नहीं होंगी, तब विद्यार्थी सीखेंगे कैसे? भविष्य में सावधानी रखो, यही बहुत है।' प्यार से गुरुजी ने विद्यार्थियों को समझाया। उक्त गुरु कोई और नहीं, बल्कि थे- भारत में अंतरिक्ष-युग के प्रणेता डॉ.विक्रम अम्बालाल साराभाई। तब उन्होंने यह प्रयोगशाला नई-नई प्रारंभ की थी। काफी बड़ा नुकसान हो जाने पर भी वह विद्यार्थियों पर बिगड़े नहीं, बल्कि उन्हें प्यार से समझाया ही।

मौसम विभाग से 28 फरवरी, 1948 को अवकाश प्राप्त करने के बाद उनकी पूर्ण सेवाएँ साराभाई की नई प्रयोगशाला को मिल सकेंगी।

प्रयोगशाला का जन्म

डॉ. साराभाई ने 'अहमदाबाद एजूकेशनल सोसायटी' के अधिकारियों से भी बातें कीं कि वे नई प्रयोगशाला की स्थापना में 'कर्मक्षेत्र एजूकेशनल फाउंडेशन' का सहयोग करें। नवम्बर 1947 में उक्त दोनों संस्थाओं के बीच एक समझौता हुआ ताकि भौतिक प्रयोगशाला की स्थापना अहमदाबाद में हो सके। वैज्ञानिक और औद्योगिक अनुसंधान परिषद और परमाणु ऊर्जा विभाग की अनौपचारिक स्वीकृति और सहयोग भी मिला। उल्लेखनीय है कि उस समय उक्त दोनों संस्थाओं के सर्वे सर्वा क्रमशः डॉ.शांति स्वरूप भटनागर और डॉ. होमी जहाँगीर भाभा थे।

अभी प्रयोगशाला की अपनी कोई ज़मीन आदि तो थी नहीं, अतः अहमदाबाद एजूकेशनल सोसायटी ने कार्य शुरू करने के लिए महात्मा गांधी विज्ञान संस्थान में कुछ कमरे दे दिए और वहाँ एक छोटी सी प्रयोगशाला और कार्यशाला के रूप में 'भौतिक अनुसंधानशाला' का कार्य आरंभ हुआ। मार्च, 1948 में ही, डॉ. रामानाथन ने भौतिक अनुसंधानशाला के निदेशक और वायुमंडल भौतिकी के प्रोफेसर के रूप में ज्वाइन कर लिया। डॉ.साराभाई कॉस्मिक किरण शोध के प्राध्यापक थे। प्रयोगशाला के निदेशक के रूप में जिम्मेदारी संभालने के कुछ ही महीनों बाद प्रयोगशाला ने डॉ. रामानाथन को यूरोप की वैज्ञानिक यात्रा पर भेजा ताकि विदेशी प्रयोगशालाओं को देख कर वे समझ सकें कि इस नई प्रयोगशाला को किन-किन उपकरणों की जरूरतें हैं। उन्होंने आयरलैंड, नार्वे, स्वीडन, बेल्जियम, फ्रांस आदि देशों की यात्राएँ की, बहुत से वैज्ञानिकों से भेंट की और ढेर सारे अनुभवों के साथ भारत वापस आए।

1950 में प्रयोगशाला की प्रबंध समिति का गठन किया गया, जिसमें अहमदाबाद एजूकेशनल सोसायटी, कर्मक्षेत्र एजुकेशन फाउंडेशन, प्राकृतिक संपदा एवं वैज्ञानिक अनुसंधान मंत्रालय, परमाणु ऊर्जा आयोग (भारत सरकार), बम्बई सरकार के प्रतिनिधि शामिल थे।

- पहली प्रबंधक समिति के सदस्य इस प्रकार थे :
- श्री कस्तूरभाई लालभाई (अहमदाबाद एजूकेशनल सोसायटी के प्रतिनिधि)
- डॉ. शांति स्वरूप भटनागर,

महानिदेशक- वैज्ञानिक और औद्योगिक अनुसंधान परिषद (भारत सरकार और परमाणु ऊर्जा आयोग के प्रतिनिधि)

- डॉ.के.एस. कृष्णन, निदेशक- राष्ट्रीय भौतिक प्रयोगशाला (अहमदाबाद एजूकेशनल सोसायटी के प्रतिनिधि)
- प्रो.वाई.जी. नायक, गुजरात कालेज, अहमदाबाद (बम्बई सरकार के प्रतिनिधि)
- प्रो.विक्रम साराभाई, भौतिक अनुसंधानशाला, अहमदाबाद (कर्मक्षेत्र एजूकेशन फाउंडेशन के प्रतिनिधि)
- प्रो.के.आर. रामानाथन, निदेशक- भौतिक अनुसंधानशाला, अहमदाबाद (भू.पू. सदस्य)

अनुसंधानशाला के भवन निर्माण और क्षेत्र अनुसंधान के लिए जमीनें अहमदाबाद एजूकेशनल सोसायटी ने प्रदान की और 15 फरवरी, 1952 को भौतिक अनुसंधानशाला की नींव प्रख्यात नोबेल विज्ञानी सर सी.वी. रामन ने रखी, और पहले भवन का उद्घाटन तत्कालीन प्रधानमंत्री पं. जवाहर लाल नेहरू ने 10 अप्रैल, 1954 को किया।

डॉ. रामानाथन को वर्ष 1951 से 1954 तक की अवधि के लिए 'अन्तर्राष्ट्रीय मौसम विज्ञान संगठन' का अध्यक्ष चुना गया। वर्ष 1954-57 की अवधि के लिए वे 'अन्तर्राष्ट्रीय भू-गणित और भू-भौतिकी संघ' के भी अध्यक्ष चुने गए। 1953-54 में 'अन्तर्राष्ट्रीय भू-भौतिकी वर्ष' की योजनाओं को क्रियान्वित किया गया। डॉ. रामानाथन् तथा डॉ. साराभाई दोनों ने मिलकर बड़ी तत्परता से योजनाओं की रूपरेखा तैयार की जिनमें भू-विज्ञान, भू-चुम्बकत्व और कॉस्मिक किरणों के विभिन्न क्षेत्रों से सम्बद्ध अध्ययन शामिल थे।

हर एक के लिए समय

डॉ. साराभाई बहुत ही नम्र और सरल स्वभाव थे। उनके जीवन में सादगी थी। दूसरों से हमेशा मैत्रीपूर्ण और सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार करते। शोधकार्य के अतिरिक्त परिवार के औद्योगिक कार्यों की भी देख-भाल करते। तमाम व्यस्तताओं के बावजूद वह मिलने-जुलने वालों के लिए समय निकालते। लोग अपनी कठिनाइयाँ एवं कहानियाँ सुनाकर उनका समय व्यर्थ करते। एक बार किसी ने पूछा, 'क्या आपका बहुमूल्य समय नष्ट नहीं हो रहा है?'

इस पर डॉ. साराभाई बोले, 'अपने इतने विशाल देश में लोग कहाँ-कहाँ से आते हैं, और प्रत्येक व्यक्ति इतना भाग्यशाली नहीं है कि वह ज्ञान उसे मिला हो, जो हमें मिला है। इसीलिए हमें उनके मन की बात सुन लेनी चाहिए, समझ लेनी चाहिए।'

सब की मदद

विद्यार्थियों ही नहीं, डॉ. साराभाई किसी भी व्यक्ति की सहायता के लिए तत्पर रहते, जो तनिक भी कष्ट में हो। एक दिन एक कुली बक्सों से भरी हाथ-गाड़ी संस्था में ले जा रहा था, लेकिन उसे वह आसानी से खींच नहीं पा रहा था। डॉक्टर साराभाई ने जब देखा, तो उनसे न रहा गया। वह दौड़े-दौड़े आए और गाड़ी चलाने में कुली की सहायता की।

भौतिक अनुसंधान प्रयोगशाला और भारत में अंतरिक्ष अनुसंधान का विकास

कदाचित भारतीय अंतरिक्ष विज्ञान की विकास यात्रा भौतिक अनुसंधान प्रयोगशाला से पर्याप्त तालमेल रखती है। इसी नाते अंतरिक्ष अनुसंधान की शुरूआत हम पी.आर.एल. की स्थापना से ही मानते हैं। वस्तुतः भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान के बीज यहीं पर पनपे थे।

अन्तर्राष्ट्रीय भू-भौतिकी वर्ष की समाप्ति के बाद कृत्रिम उपग्रह हकीकत बन चुके थे। अतः भौतिक अनुसंधान प्रयोगशाला ने अपने अन्तरिक्ष विषयक अनुसंधानों की बढ़ोत्तरी में सहयोग के लिए परमाणु ऊर्जा विभाग के पास निवेदन भेजा। विभाग के तत्कालीन अध्यक्ष डॉ. होमी जहाँगीर भाभा ने भौतिक अनुसंधान प्रयोगशाला के कार्यों और उपलब्ध सुविधाओं की जाँच के लिए विशेषज्ञों की एक टोली भेजी और संतोषजनक रपट मिल जाने पर डॉ. भाभा ने भारत सरकार को अपनी अनुशंसा में लिखा कि परमाणु-ऊर्जा विभाग उक्त प्रयोगशाला को अंतरिक्ष अनुसंधान के लिए ग्रांट दे सकता है और प्रयोगशाला की प्रबंध व्यवस्था एक ऐसी समिति को सौंप दिया जाये जिसमें भारत सरकार, गुजरात सरकार, अहमदाबाद

अक्टूबर 1963 में अंतरिक्षीय गतिविधियों का प्रशासनिक कार्यभार भारत सरकार ने डॉ. साराभाई के निर्देशन में पी.आर.एल. को सौंप दिया। 21 नवम्बर, 1963 की शाम को थुम्बा से पहला राकेट अंतरिक्ष में दागा गया। आगामी वर्षों में डॉ. साराभाई ने पी.आर.एल. में विभिन्न क्षेत्रों में वैज्ञानिक अनुसंधान की सुविधाएँ जुटाने, सक्षमता बढ़ाने और योग्यता अर्जित करने में कोई कोर-कसर न छोड़ी। पी.आर.एल. के वैज्ञानिकों ने एक तरफ राष्ट्रीय अंतरिक्ष कार्यक्रमों के प्रबंधन और प्रशासन में दिलचस्पी ली तो दूसरी ओर अंतरिक्ष अनुसंधान में भी अपनी अहम् भूमिका निभायी।

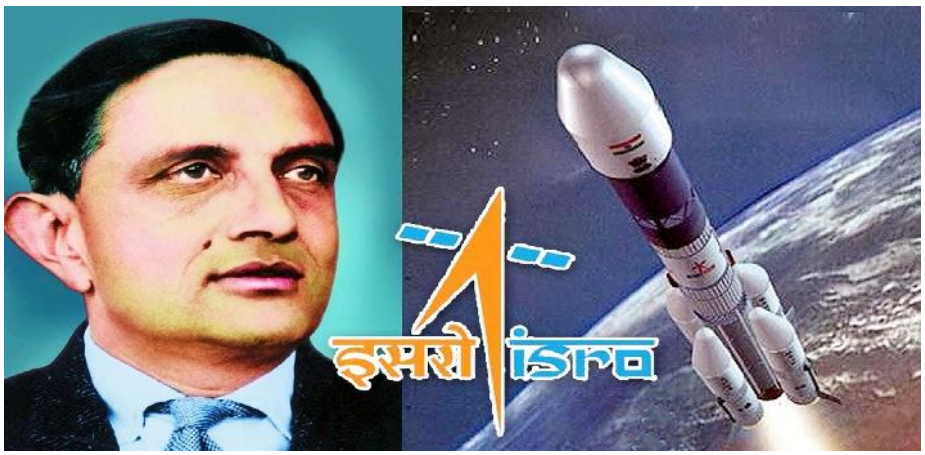

एजूकेशनल सोसायटी, कर्मक्षेत्र एजूकेशनल फाउंडेशन और उक्त प्रयोगशाला के निदेशक प्रतिनिधि हों। यह निर्णय सभी ने स्वीकारा और 5 फरवरी, 1963 को एक समझौते पर हस्ताक्षर के साथ योजना के क्रियान्वयन की शुरूआत हुई।

1962 के प्रारंभ में परमाणु-ऊर्जा विभाग ने अपनी देखरेख में बाह्य अंतरिक्ष के शांतिपूर्ण उपयोग के लिए 'अंतरिक्ष अनुसंधान की भारतीय समिति' गठित की। डॉ. विक्रम साराभाई इसके अध्यक्ष बनाए गए और 11 अन्य सदस्य थे जिनमें से अधिकांश पी.आर.एल.के वैज्ञानिक थे। डॉ. साराभाई ने अरब सागर के किनारे थुम्बा नामक स्थान चुना, जो राकेट प्रक्षेपण के लिए सर्वथा उपयुक्त था। डॉ. साराभाई ने अपनी निष्ठा, लगन और डॉ. होमी भाभा के स्नेहपूर्ण सहयोग से अत्यल्प समय में ही थुम्बा में राकेट लांचिंग के लिए सारी सुविधाएँ जुटा लीं।

अक्टूबर 1963 में अंतरिक्षीय गतिविधियों का प्रशासनिक कार्यभार भारत सरकार ने डॉ. साराभाई के निर्देशन में पी. आर. एल. को सौंप दिया। 21 नवम्बर, 1963 की शाम को थुम्बा से पहला राकेट अंतरिक्ष में दागा गया। आगामी वर्षों में डॉ. साराभाई ने पी.आर.एल. में विभिन्न क्षेत्रों में वैज्ञानिक अनुसंधान की सुविधाएँ जुटाने, सक्षमता बढ़ाने और योग्यता अर्जित करने में कोई कोर-कसर न छोड़ी। पी.आर.एल. के वैज्ञानिकों ने एक तरफ राष्ट्रीय अंतरिक्ष कार्यक्रमों के प्रबंधन और प्रशासन में दिलचस्पी ली तो दूसरी ओर अंतरिक्ष अनुसंधान में भी अपनी अहम् भूमिका निभायी। सच यही है कि देश में अंतरिक्ष अनुसंधान का जो 'टेम्पो' बना, वह पी.आर. एल.की ही देन है।

विज्ञान और प्रौद्योगिकी के शुरुआती दौर में सभी विकासशील राष्ट्र विकसित राष्ट्रों से तकनीकी सहयोग के लिए दोस्ती भरे हाथ की जरूरत महसूस करते हैं। डॉ. भाभा और डॉ. साराभाई दोनों का यह विश्वास था कि निरंतर विदेशी सहायता पर निर्भर रहना भविष्य में निराशाजनक होगा अतः विकासशील राष्ट्रों को तनीकी आत्मनिर्भरता स्वयं अपने प्रयासों से हासिल करनी चाहिए और इस तरह पी.आर. एल.राकेटों में प्रयुक्त होने वाले वैज्ञानिक

देश में अंतरिक्ष अनुसंधान की आधारशिला रखने और उसका जाल बिछाने में भौतिक अनुसंधान शाला का अभूतपूर्व योग है, जिसे भुलाया नहीं जा सकता है। और कुल मिलाकर यह सारा करिश्मा डॉ. साराभाई की देन है। आज भी भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन की अंतरिक्ष प्रौद्योगिकी एवं अनुसंधान सम्बंधी सारी आयोजना व तकनीकी प्रबंध अहमदाबाद की `भौतिक अनुसंधान प्रयोगशाला' ही करती है। देश के प्रख्यात अंतरिक्ष वैज्ञानिक यथा डॉ.यू.आर. राव, डॉ. सत्य प्रकाश, के. कस्तूरीरंगन आदि पी.आर.एल. की ही देन हैं।

नीतभारों के विकास और निर्माण का केन्द्र बन गया। राकेटों के प्रक्षेपण और निर्माण की तकनीकों तथा सम्बद्ध दूर संचार एवं डाटा प्रोसेसिंग सुविधाओं के विकास के लिए 'थुम्बा' संगठन का विस्तार किया गया। 'इन्कोस्पार' के तत्वावधान में अहमदाबाद में वर्ष 1965-67 के दौरान एक प्रयोगात्मक उपग्रह संचार भू-केन्द्र

की स्थापना की गई जिसका उद्देश्य शैक्षणिक टी.वी., प्रसारण और अन्य राष्ट्रीय सेवाओं की आधारशिला रखना था।

जनवरी 1966 में एक हवाई दुर्घटना में जब डॉ. भाभा की दुखद मृत्यु हो गई तो परमाणु ऊर्जा और अंतरिक्ष अनुसंधान दोनों की जिम्मेदारी डॉ. साराभाई के कंधों पर आ गई। डॉ. साराभाई ने अपनी जिम्मेदारी समझी और अहमदाबाद तथा थुम्बा दोनों स्थानों पर अंतरिक्ष अनुसंधान संबंधी गतिविधियों में तेजी आयी। फरवरी 1968 में तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी ने थुम्बा राकेट प्रक्षेपण केंद्र को 'अन्तर्राष्ट्रीय भूमध्य रेखीय प्रक्षेपण केन्द्र' के रूप में संयुक्त राष्ट्र को सर्मिपत किया।

राष्ट्र के सामाजिक और आर्थिक विकास में योगदान और अंतरिक्ष अनुसंधान के राष्ट्रीय कार्यक्रमों को संचालित करने के लिए 1969 में परमाणु ऊर्जा विभाग के अन्तर्गत 'भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन' का गठन किया गया जिसका प्रशासनिक नियंत्रण पी.आर.एल. के निदेशक (यानी डॉ. साराभाई) को सौंपा गया।

दिसम्बर 1971 में थुम्बा केन्द्र में डॉ. साराभाई राकेट छोड़ने का मार्गदर्शन कर रहे थे। 29 तारीख की रात को उनका त्रासद निधन हो गया। इस तरह हमने भारतीय अंतरिक्ष विज्ञान के जनक को खो दिया। डॉ. साराभाई के निधन के बाद 1972 में एक नये विभाग 'अंतरिक्ष विभाग' की स्थापना की गई। प्रो. सतीश धवन इसके सचिव और 'इसरो' के अध्यक्ष नियुक्त किए गए।

डॉ. साराभाई की लगन और दूरदर्शिता का ही यह परिणाम है कि आज अहमदाबाद में न केवल 'भौतिक अनुसंधान प्रयोगशाला' है, अपितु अन्य सहयोगी संस्था 'अंतरिक्ष अनुप्रयोग केन्द्र' भी स्थापित हो चुकी है जिसकी कई उपयोगी यूनिटें यथा- प्रयोगात्मक उपग्रह संचार भू-केन्द्र, उपग्रह आदेशात्मक टेलीविजन प्रयोग; उपग्रह संचार प्रणाली प्रयोग, इलेक्ट्रानिक प्रणाली प्रभाग; श्रव्य-दृश्य आदेश विभाग; सूक्ष्म तरंग विभाग; तथा सुदूर संवेदन एवं मौसम अनुप्रयोग प्रभाग आदि कार्यरत हैं।

देश में अंतरिक्ष अनुसंधान की आधारशिला रखने और उसका जाल बिछाने में भौतिक

अनुसंधान शाला का अभूतपूर्व योग है, जिसे भुलाया नहीं जा सकता है। और कुल मिलाकर यह सारा करिश्मा डॉ. साराभाई की देन है। आज भी भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन की अंतरिक्ष प्रौद्योगिकी एवं अनुसंधान संबंधी सारी आयोजना व तकनीकी प्रबंध अहमदाबाद की 'भौतिक अनुसंधान प्रयोगशाला' ही करती है। देश के प्रख्यात अंतरिक्ष वैज्ञानिक यथा डॉ. यू.आर. राव, डॉ. सत्य प्रकाश, के. कस्तूरीरंगन आदि पी.आर. एल. की ही देन हैं।

अंतरिक्ष अनुसंधान का वर्तमान ढांचा

'सरकार बाह्य अंतरिक्ष के अन्वेषण को तथा अंतरिक्ष विज्ञान व प्रौद्योगिकी के विकास और उसके उपयोग को अत्यधिक महत्व देती है। अतः इस प्रौद्योगिकी की जटिलता, विषय की नवीनता, इसके विकास की सामाजिक प्रवृत्ति तथा अनेक क्षेत्रों में इसके उपयोगों को देखते हुए आवश्यक है कि सरकार इसके संचालन के लिए उचित संगठनात्मक ढाँचा तैयार करे।'

और इस प्रस्ताव के साथ 1972 में 'अंतरिक्ष आयोग' की स्थापना की गई। अंतरिक्ष विभाग की नीति का निर्धारण करना, सरकार की मंजूरी के लिए अंतरिक्ष विभाग के बजट को तैयार करना और बाह्य अंतरिक्ष से सम्बंधित सभी मामलों में सरकार की नीति का क्रियान्वयन जैसी जिम्मेदारियाँ आयोग को सौंपी गई हैं।

भारतीय अंतरिक्ष अनुसधान संगठन के माध्यम से देश में अंतरिक्ष उपयोग, अंतरिक्ष प्रौद्योगिकी और अंतरिक्ष विज्ञान के क्षेत्र से सम्बंधित अंतरिक्ष क्रिया कलापों के कार्यान्वयन के लिए अंतरिक्ष विभाग उत्तरदायी है। उल्लेखनीय है कि 'इसरो' के लिए सारा तकनीकी प्रबंध अहमदाबाद की पी.आर.एल. ही करती है।

'अंतरिक्ष विभाग' और 'भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन' ('इसरो') के मुख्यालय बंगलौर में स्थित हैं तथा ये 'इसरो' के निम्न चार केन्द्रों को तकनीकी, वैज्ञानिक और प्रशासनिक कार्यों का समग्र निर्देशन देते हैं।

अंतरिक्ष उपयोग केंद्र, अहमदाबाद

राष्ट्र के सामाजिक, आर्थिक लाभ के लिए अंतरिक्ष प्रौद्योगिकी के उपयोग हेतु

इस केंद्र द्वारा संचालित दो प्रमुख परियोजनाएँ हैं- उपग्रह प्रमोचक यान (एस.एल.वी.) परियोजना और रोहिणी परिज्ञापी राकेट कार्यक्रम। विक्रम साराभाई केंद्र में विकास, उत्पादन और जांच के लिए विविध यांत्रिकी, रसायनिकी और इलेक्ट्रॉनिकी सुविधाएं भी उपलब्ध हैं जो वर्तमान में चल रहे विभिन्न कार्यक्रमों की आवश्यकताओं को पूरा करने में सक्षम हैं।

परियोजनाओं की परिकल्पना, कार्यक्रम और निष्पादन तथा अनुसंधान कार्य 'अंतरिक्ष उपयोग केंद्र', अहमदाबाद द्वारा निष्पादित किए जाते हैं।

इन लक्ष्यों की पूर्ति के लिए अंतरिक्ष उपयोग के दो व्यापक क्षेत्र हैं- उपग्रह आधारित संचारों पर कार्यक्रम और सुदूर संवेदन, मौसम विज्ञान एवं भू-गणित सम्बंधी कार्यक्रम। इन कार्यक्रमों का संचालन चार प्रमुख क्षेत्रों और उनकी सहायक सुविधाओं-संचार क्षेत्र, सुदूर संवेदन क्षेत्र, आयोजना एवं परियोजना समूह और सॉफ्टवेयर प्रणाली समूह द्वारा किया जाता है।

'इसरो' उपग्रह केंद्र, बंगलौर

इसरो उपग्रह अनुप्रयोग केंद्र, बंगलौर 'भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन' के उपग्रह कार्यक्रम का प्रमुख अंग है। भू-प्रक्षेपण उपग्रह, एरिएन पैसेंजर नीतिभार परीक्षण (एप्पल) उपग्रह और रोहिणी उपग्रह जैसी परियोजनाएँ इसकी कुछेक महत्वपूर्ण उपलब्धियाँ हैं। इस केंद्र के प्रमुख भाग हैं- इलेक्ट्रॉनिकी, यांत्रिकी प्रणालियों, नियंत्रण प्रणालियों एवं संवेदक, मिशन प्रचालन एवं आयोजना आदि के लिए सुविधाएँ।

विक्रम साराभाई अंतरिक्ष केंद्र, त्रिवेन्द्रम

विक्रम साराभाई अंतरिक्ष केंद्र, त्रिवेन्द्रम 'भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन' के सभी केंद्रों में सबसे बड़ा है। इसकी छः प्रमुख यूनिटें हैं- अंतरिक्ष विज्ञान और प्रौद्योगिकी केंद्र; थुम्बा भू-मध्य रेखीय राकेट प्रक्षेपण केंद्र, राकेट निर्माण सुविधा, राकेट प्रणोदक संयंत्र, राकेट ईंधन काम्पलेक्स और फाइबर प्रवलित प्लास्टिक केंद्र। ये यूनिटें प्रमुख रूप से प्रमोचक राकेटों या अंतरिक्षयान के लिए प्रौद्योगिकियों का उत्पादन करती हैं। इस केंद्र द्वारा संचालित दो प्रमुख परियोजनाएँ हैं- उपग्रह प्रमोचक यान (एस.एल.वी.) परियोजना और रोहिणी परिज्ञापी राकेट कार्यक्रम। विक्रम साराभाई केंद्र में विकास, उत्पादन और जांच के लिए विविध यांत्रिकी, रसायनिकी और इलेक्ट्रॉनिकी सुविधाएं भी उपलब्ध हैं जो वर्तमान में चल रहे विभिन्न कार्यक्रमों की आवश्यकताओं को पूरा करने में सक्षम हैं।

शार केंद्र, श्रीहरिकोटा

शार केंद्र, श्रीहरिकोटा भारत का प्रमुख राकेट एवं उपग्रह प्रमोचक केंद्र है, जिसका कार्य है- राकेट जांच एवं प्रमोचन सुविधाएँ प्रदान करना, राष्ट्रीय उपग्रहों के रख-रखाव में प्रचलनात्मक सहायता के लिए भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन के राष्ट्र व्यापी अनुवर्तन जाल कार्य की व्यवस्था करना और प्रमोचक राकेटों के लिए ठोस प्रणोदकों का उत्पादन करना।

'शार' रेंज में इसरो केंद्र काम्पलेक्स, स्थैतिक जांच एवं मूल्यांकन काम्पलेक्स, इसरो अनुवर्तन, दूर मिति आदेश एवं आंकड़ा ग्रहण जाल कार्य, ठोस प्रणोदक अंतरिक्ष वर्धक संयंत्र, शार कम्प्यूटर सुविधा, श्रीहरिकोटा सामान्य सुविधाएँ शामिल हैं। अब इस केंद्र का नाम 'सतीश धवन अंतरिक्ष केंद्र' हो गया है। प्रो. धवन सबसे सुदीर्घ अवधि तक 'इसरो' के अध्यक्ष थे। उनकी स्मृति को जीवंत बनाने के लिए कृतज्ञ राष्ट्र की ओर से पुष्पांजलि।

sdprasad24oct@yahoo.com

विज्ञान संचार की सामाजिक उपयोगिता

एम.एल.मुद्गल

श्री एम. एल. मुद्गल एक वरिष्ठ लेखक, कवि और चिन्तक हैं। विज्ञान के सामाजिक पहलुओं और देश में वैज्ञानिक चेतना के विकास उनके लेखन का मुख्य विषय रहे हैं। श्री मुद्गल वर्तमान में विज्ञान प्रसार में सलाहकार हैं।

मानव के क्रमिक विकास और उसके बौद्धिक उन्नयन में शब्द और साहित्य की भूमिका अहम रही है। वास्तव में, मनुष्य की ज्ञान वृद्धि की दिशा में ज्ञान-विज्ञान उल्लेखनीय पड़ाव के समान हैं। शब्दों का नियमित समूह ही वाक्यांशों की आधारशिला बनकर किसी संवाद का ठोस रूप धारण करता है। आपसी संवाद मानवीय कल्याण एवं सामाजिक व्यवहार का अति आवश्यक अवयव है। विश्व व्यवहार एवं दैनिक क्रियाओं की सम्पन्नता के लिए आपसी संवाद एक बहुत ही आवश्यक कड़ी है। समुदाय लैटिन भाषा के शब्द communis का रूपांतरण है जिसका व्यापक अर्थ भाईचारा, मैत्री भाव आदि भी हो सकता है और इसी communis शब्द से communication अर्थात संचार बना है अर्थात एक दूसरे को जानने-समझने, संबंध बनाने और सूचनाओं का आदान-प्रदान करने को संचार कहते हैं।

दूसरे अर्थों में, जन समुदाय के परस्पर संवाद के तौर-तरीके संचार कहलाते हैं। चूंकि विज्ञान हमारे चारों ओर व्याप्त है। साथ ही वर्तमान संदर्भ में एक तथ्य यह भी है कि आज हम विज्ञान और प्रौद्योगिकी से जुड़े ज्ञान के बिना एक क्षण नहीं रह सकते। इसका सीधा आशय यह है कि हमारा सामाजिक-आर्थिक जीवन विज्ञान और इसके अनुप्रयोगों पर अनेक प्रकार से आश्रित हो चला है। इस दृष्टिकोण में विज्ञान के हमारे जीवन पर होने वाले प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष प्रभावों के आंकलन/मूल्यांकन के लिए इससे जुड़े विचारों अथवा सूचनाओं का प्रसार अति आवश्यक है। संचार की इस विशेष धारा को विज्ञान संचार नाम दिया गया है।

संचार का अतीत और विज्ञान संचार की उपयोगिता

संचार के मर्म को समझने के लिए आइए हम इसकी पृष्ठभूमि में झांकने का प्रयत्न करते हैं। भारतीय परंपरा की एक विशेषता रही है कि प्रत्येक विषय के दार्शनिक चिंतन पर सदियों तक चर्चायें होती रही हैं। वेदों और उपनिषदों की वाणी श्रुतियां हैं। अर्थात छापेखानों का सुव्यवस्थित आधार बनने से पूर्व ज्ञान एवम् शोध सम्बन्धी सूचनाओं का आदान-प्रदान गुरु शिष्य परम्परागत श्रुतियों द्वारा होता था। इन श्रुतियों का एक से सुन कर किसी दूसरे तक पहुँचाना बहुत ही प्रचलित संचार तन्त्र था। प्राचीन काल में दूतों एवं गुप्तचरों की राजाओं द्वारा समुचित व्यवस्था थी। श्रुतियां संचार का एक महत्वपूर्ण साधन रही हैं।

हिंदी में एक बहुचर्तित पद्यांश है

लाली मेरे लाल की जित देखू तित लाल,
लाली देखन मैं गई मैं भी हो गई लाल।

इस पद्यांश में तीन प्रक्रियाएं हैं, देखना, सुनना और व्यवहार में लाना। ज्ञान प्राप्ति के यही तीन स्रोत हैं। किसी भी कार्य को सकुशल सम्पन्न करना उस कार्य की जानकारी पर निर्भर करता है। समाचार पत्र जानकारी सुलभ कराने का कदापि उपलब्ध साधनों में से एक है। अतः संचार को सुचारू रूप प्रदान करने का एक सशक्त साधन पत्रकारिता है जिसका प्रारंभ मूलतः सन 131 ई.पू. रोम में हुआ बताते हैं। मध्य काल के यूरोप में क्रय-विक्रय मूल्यों का उतार-चढ़ाव लेकिन वैज्ञानिक अन्वेषणों के समक्ष सम्पूर्ण विश्व में एक गैर-वैज्ञानिक समाज खड़ा था। यहां तक कि उसके दैनिक उपयोग की वस्तुओं में निहित वैज्ञानिक नियम एवं सूत्रों से कदापि अनभिज्ञ होकर सामाजिक कुरीतिओं और अन्धविश्वासों से अपनी श्रद्धा एवं विश्वासों को संजोया हुआ था। यहां पर विज्ञान से जुड़े संचार ने अहम भूमिका निभाई।

विज्ञान संचार का सामान्य उद्देश्य संचार माध्यमों द्वारा गैर वैज्ञानिक समाज को विज्ञान के विभिन्न पहलुओं और उनकी जानकारी से रूबरू कराना है। दूसरे शब्दों में विज्ञान संचार के माध्यम से विज्ञान सम्बन्धी जानकारी को उन लोगों तक पहुँचाया जाता है जो उन विषयों के या तो विशेषज्ञ नहीं है अथवा उन विषयों के जानकर नहीं हैं। व्यवसायिक वैज्ञानिक इस विधा को विज्ञान का लोकप्रिय-करण या आउटरीच कहते हैं। अतः विज्ञान संचार की इस प्रक्रिया में वैज्ञानिक निष्कर्षों की अपेक्षा वैज्ञानिक सिद्धांतों के स्पष्टीकरण पर अधिक ध्यान देने की आवश्यकता होती है। विज्ञान संचारकों के सामाजिक उत्तरदायित्व पर टिप्पणी करते हुए श्री सराह बून लिखते हैं कि वैज्ञानिक पर अक्सर बाह्य पहुँच और जन विनियोजन जैसे शब्द आडम्बरों का बोझ होता है। अतः उनके दृष्टिकोण में विज्ञान का संचार और विज्ञान को आम आदमी की पहुंच में लाना एक दुस्कर किंतु उत्तरदायित्वपूर्ण कार्य है।

विज्ञान संचार अथवा लोकप्रियकरण के मायने और कसौटियाँ आज विज्ञान का लोकप्रियकरण विज्ञान संचार का एक व्यवसायिक क्षेत्र बनकर समस्त विश्व मानचित्र पर उपस्थित हुआ है। संस्कृत हमारे देश की बोलचाल की प्राचीन भाषा रही है। इस भाषा

वैदिक कालीन युग में खगोलीय ज्ञान तो अपनी चरम सीमा पर था। सूर्य सिद्धांत का प्रतिपादन, नव ग्रहों की दैनिक गति, वर्ष, दिन रात दिनमान नक्षत्रों का 27 विभागों में विभाजन, सूर्य एवं चंद्र ग्रहणों की जानकारी और राहू-केतु जैसे छाया ग्रहों का प्राकट्य उस समय की असाधारण उपलब्धि कही जा सकती है।

की समृद्धि पर हम भारतवासी बहुत गौरवांवित भी होते रहे हैं। संस्कृत इस देश में 1500 ई.पू. से 500 ई.पू. तक एक उज्ज्वल इतिहास लेकर जीती रही है। लेकिन साहित्य सृजन में वैदिक संस्कृत में केवल वैदिक वांग्मय की रचनायें हुई और लौकिक अर्थात क्लासिकल संस्कृत में वाल्मीकि, भास, अश्वघोष, कालिदास, माघ आदि की ही रचनायें श्रवण योग्य हैं। साहित्य सृजन के साथ संस्कृतकालीन सभ्यता शायद विश्व की सर्वोच्च एवं सर्वांग प्रखर सभ्यता थी। जब दुनिया की मानव प्रजातियां कंदराओं से निकल कर झोंपड़िया बनाना सीख रही थीं तब यहां के लोग प्रासादों में रहना सीख गए थे। सिन्धु घाटी की सभ्यता संसार की सर्वोच्च संपन्न सभ्यता थी। लोग गावों व शहरों में

समुचित संगठित पूर्ण सुरक्षा अवस्था में जीवनयापन कर रहे थे। यातयात के लिए बैलगाड़ियाँ प्रचलन में थीं। अग्नि प्रज्वलन की रीति, कृषियोग्य यंत्रों का प्रयोग आम बात थी। यहाँ के व्यापारी जहाजों से विदेशों में वाणिज्य से जुड़ी यात्राएं करते थे। सोने-चाँदी और बहुमूल्य आभूषण प्रचलन में थे। वस्त्र उद्योग भी बहुत उन्नत था। वैदिक कालीन युग में खगोलीय ज्ञान तो अपनी चरम सीमा पर था। सूर्य सिद्धांत का प्रतिपादन, नव ग्रहों की दैनिक गति, वर्ष, दिन रात दिनमान नक्षत्रों का 27 विभागों में विभाजन, सूर्य एवं चंद्र ग्रहणों की जानकारी और राहू-केतु जैसे छाया ग्रहों का प्राकट्य उस समय की असाधारण उपलब्धि कही जा सकती है। भारत में विज्ञान की जड़ें बहुत गहरी हैं। इस भूमि में आर्यभट, वराहमिहिर, ब्रह्मगुप्त, चरक, सुश्रुत, नागार्जुन और कणाद जैसे वैज्ञानिकों की एक लम्बी कतार है जिन्होंने विज्ञान को एक सुव्यवस्थित रूप दिया। पूजा-अर्चना में काम आने वाला संकल्प पूर्ण रूपेण वैज्ञानिक है। इसमें शब्द परार्द्धे (1012) के अर्थ में प्रयोग किया जाता है। यहाँ का आयुर्विज्ञान जिसमें शल्य चिकित्सा का भी उल्लेख है जो शायद संसार का सबसे बड़ा चिकित्सा शास्त्र है। इसमें सम्पूर्ण शरीर-विज्ञान कफ-पित्त एवं स्नायु-तंत्र पर विभिन्न शोधों पर आधारित अनुभवी वैद्यों द्वारा रोगों का उपचार उपलब्ध था। इसके अतिरिक्त कपड़े रंगने की सम्पूर्ण तकनीकी सुचारू रूप से काम कर रही थी। लेकिन 10वीं और 11वीं शताब्दी के आते-आते विदेशी आक्रमणों और अंग्रेजों के आगमन से इस देश की वैज्ञानिक यात्रा जैसे रुक सी गई थी। उस समय जबकि छापेखानों का आविष्कार नहीं हुआ तो भी उपरोक्त वैज्ञानिक विषयों के पठन-पाठन विस्तृत जानकारी हेतु गुरुकुल पद्धति द्वारा ज्ञानवर्धन एवं संचार की व्यवस्थाएं प्रायः उपलब्ध थीं।

आधुनिक भारत भी वैज्ञानिक उन्नति में संसार से कदमताल मिला कर चल रहा है। यह देश कृषि प्रधान देश है। कृषि यहां की अर्थव्यवस्था का मुख्य आधार है। कृषि के क्षेत्र में आत्मनिर्भरता के लिए 1905 में इम्पीरियल एग्रीकल्चरल रिसर्च इंस्टिट्यूट की स्थापना से लेकर वर्तमान में भारतीय कृषि अनुसन्धान

परिषद् की स्थापना सार्थक पहल रहे हैं। कृषि के क्षेत्र में उपलब्धियों का श्रेय डॉ. बी. पीपाल, एम.एस. स्वामीनाथन और डॉ. नार्मन बोरलाग जैसे महान वैज्ञानिकों को जाता है। विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी की आधुनिक विकास यात्रा 1942 में सर स्वामी मुदालियर और डॉ. शांति स्वरुप भटनागर के अथक प्रयासों से प्रारंभ हुई। स्वतंत्र भारत के प्रथम प्रधान मंत्री पंडित जवाहर लाल नेहरु ने इस देश के विकास के लिए वैज्ञानिक दृष्टिकोण अर्थात साइंटिफिक टेम्पर जगाने का संकल्प लिया। इस पुनीत संकल्प की संपन्नता के लिए पंडित नेहरु ने डॉ. शांति स्वरुप भटनागर से हाथ मिलाकर इस देश में 15 प्रयोगशालायें स्थापना कीं। आज कृषि, चिकित्सा, परमाणु उर्जा, इलेक्ट्रोनिकी, संचार अन्तरिक्ष, परिवहन एवं रक्षा विज्ञान आदि सभी क्षेत्रों में भारत के वैज्ञानिकों के सार्थक योगदान सर्वत्र चिन्हित हैं। डॉ. होमी जहागीर भाभा के प्रयासों से परमाणु उर्जा के क्षेत्र में यह देश विकसित श्रेणी में खड़ा दिखाई देता है। कम्प्यूटर, डिजिटल, प्रौद्योगिकी पर आधारित मोबाइल, इंटरनेट ने सूचना एवं संचार में व्यापक प्रगति की है। भारत की अब तक की वैज्ञानिक सफलता के पीछे जगदीश चन्द्र बोस, सी.वी.रामन, मेघनाद साहा, प्रफुल्ल चंद्र राय, हरगोविंद खुराना आदि के नाम भी उल्लेखनीय हैं।

लेकिन सुदीर्घ यात्रा के दोनों ओर भ्रांतियों एवं कुरीतियों के समूह भी अपनी बाहें फैलाये खड़े रहे इस सुदीर्घ यात्रा के दोनों ओर भ्रांतियों एवं कुरीति हैं। यहाँ टोनों-टोटकों, भूत-प्रेत, डायन-प्रथा, बलि-प्रथा, सती-प्रथा, नजर लगना, मौसम का बनना बिगड़ना, प्राकृतिक आपदाओं का आना तथा इन सब को देवताओं की मर्जी के अधीन होने का अंधविश्वास, रोगी का झाड़-फूंक से निवारण, बिल्ली के द्वारा रास्ता काटना, छिपकली का गिरना और पितरों का रूठना इत्यादि कुरीतियों से भारतीय समाज भरा पड़ा था। स्थिति आज भी कमोबेश वैसी ही है। अतः इस भ्रमित समाज को अज्ञान से विज्ञान की ओर ले जाने का चुनौतीपूर्ण उत्तरदायित्व विज्ञान प्रसारकों को है। यह कार्य इतना साधारण भी नहीं है। इसमें विज्ञान संचारकों के साथ वैज्ञानिकों को भी कदम मिलाना पड़ेगा, तब कहीं तस्वीर बदलेगी। वैज्ञानिक उन्नति के साथ-साथ विज्ञान संचारकों का कार्य क्षेत्र दिनोंदिन बढ़ता जा रहा है। इस चुनौतीपूर्ण कार्य को संपन्न करने की दिशा में भारत सरकार के विज्ञान और प्रौद्योगिकी विभाग, राष्ट्रीय विज्ञान संचार और सूचना स्रोत संस्थान, विज्ञान प्रसार और राष्ट्रीय विज्ञान ईवा, प्रौद्योगिकी संचार परिषद तथा राष्ट्रीय विज्ञान संग्रहालय परिषद जैसी प्रमुख संस्थाओं ने इस उद्देश्य हेतु सार्थक प्रयास किए हैं। लेकिन विज्ञान संचारकों को इस पुनीत अभियान को अबाध रूप से गतिमान बनाए रखने के लिए निम्न बातों को भी अमल में लाना होगा।

इस सुदीर्घ यात्रा के दोनों ओर भ्रांतियों एवं कुरीतिहैं। यहाँ टोनों-टोटकों, भूत-प्रेत, डायन-प्रथा, बलि-प्रथा, सती-प्रथा, नजर लगना, मौसम का बनना बिगड़ना, प्राकृतिक आपदाओं का आना तथा इन सब को देवताओं की मर्जी के अधीन होने का अंधविश्वास, रोगी का झाड़-फूंक से निवारण, बिल्ली के द्वारा रास्ता काटना, छिपकली का गिरना और पितरों का रूठना इत्यादि कुरीतियों से भारतीय समाज भरा पड़ा था। स्थिति आज भी कमोबेश वैसी ही है। अतः इस भ्रमित समाज को अज्ञान से विज्ञान की ओर ले जाने का चुनौतीपूर्ण उत्तरदायित्व विज्ञान प्रसारकों को है।

- संचार की भाषा सरल और सुबोध होनी चाहिए क्योंकि भाषा ही एक ऐसा माध्यम है जिसके द्वारा हम विचारों का समाज में आदान प्रदान करते हैं।
- इस प्रश्न की व्यवहारिकता से कदापि इंकार नहीं किया जा सकता कि विज्ञान पर जो लिखा जाता है, वह क्या आम आदमी तक पहुंच पाता है। और जो पहुंच पाता है वह क्या उसके लिए रुचिकर है।
- संस्थागत एवं व्यक्तिगत प्रयास एक दूसरे के पूरक हैं। इनमें सामंजस्य एवं समन्वय विज्ञान के प्रसार के मार्ग में एक सार्थक एवं निर्णायक सम्बल बन सकता है।
- सृजनात्मक साहित्य की भांति विज्ञान साहित्य भी हमारी परम्परा का अंग हो सकता है। इस क्षेत्र में सम्मेलनों एवं संगोष्ठियों का चलन अपेक्षाकृत तृणमूल (ग्रासरूट) स्तर पर होना चाहिए जिनमें अलंकृत वैज्ञानिक भी अपनी भूमिका निर्वाह करें।
- अनुवाद और तकनीकी शब्दावली की दुर्लभता को सहज बनाने की दिशा में एक बड़े प्रयास की आवश्यकता को भी महसूस किया जाता है। इसके अतिरिक्त विज्ञान संचारक को अपने विषय की प्रभावशीलता एवं स्पष्टता की ओर भी विचार मंथन करना चाहिए। प्रख्यात बाल विज्ञान लेखिका श्रीमती (डॉ.) मधु पंत का सरल संकेत भी समझिये। वे लिखती हैं कि जिज्ञासा, कौतुहल और कल्पनाओं से भरे बालमन के लिए विज्ञान लेखन चुनौती है। विज्ञान संचारक इस चुनौती को सहर्ष स्वीकारें।

अंत में विज्ञान संचारकों से अनुरोध है कि वे संचार भाषाओं में पारदर्शिता, सरलता और बोधगम्यता का समावेश करें तभी जाकर उनका सम्प्रेषण प्रभावशाली और स्थायी होगा तथा जन सामान्य में एक वैज्ञानिक (तर्कसंगत) दृष्टि का विकास हो सकेगा।

mlmudgel@gmail.com

जिन्दगी को दूभर बनाती ये दुर्लभ बीमारियाँ

डॉ.कृष्ण कुमार मिश्र

डॉ.कृष्ण कुमार मिश्र ने काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से रसायन विज्ञान में पीएच-डी. की उपाधि प्राप्त की। आप टाटा मूलभूत अनुसंधान संस्थान मुंबई के होमी भाभा विज्ञान केन्द्र में एसोसिएट प्रोफेसर हैं। लोकप्रिय विज्ञान लेखक के रूप में आपकी अपार ख्याति है जोकि हिन्दी में आपके व्यापक लेखन से निर्मित हुई है। आपके 250 से अधिक लेख तथा 22 पुस्तकें प्रकाशित हैं। राजभाषा गौरव पुरस्कार, होमी जहाँगीर भाभा स्वर्ण पुरस्कार, शताब्दी सम्मान, राजभाषा भूषण पुरस्कार, इस्वा सम्मान सहित अनेक पुरस्कारों से सम्मानित डॉ.मिश्र मुंबई में निवास करते हैं।

शास्त्रों में कहा गया है- शरीरम् व्याधि मंदिरम्। अर्थात शरीर रोगों का निवास स्थान है। यह भी एक शास्त्रीय कथन है- "शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्। अर्थात, यह शरीर मानव जीवन में धर्मसाधन का माध्यम है। यानी शरीर के बिना जीवन के कार्यकलाप संभव नहीं है। इसलिए स्वस्थ शरीर एक आवश्यकता है। वर्तमान समय में पूरी दुनिया में अनेकानेक बीमारियाँ फैली हुई हैं। इनमें से कुछ बीमारियों का इलाज आसानी से हो जाता है और कुछ बीमारियाँ लाइलाज भी हैं, जिनकी चिकित्सा अभी तक संभव नहीं हो पायी है। अधिकांश बीमारियों की पहचान प्रायः लक्षण और परीक्षण के आधार पर आसानी से हो जाती है। लेकिन कुछ बीमारियाँ ऐसी भी है जिनकी पहचान करना और उनका इलाज करना बहुत मुश्किल है। इन बीमारियों को दुर्लभ बीमारियाँ कहा जाता है। प्रतिवर्ष दुर्लभ बीमारियों के बारे में जागरूकता फैलाने के उद्देश्य से फरवरी महीने के अन्तिम दिन को "अंतर्राष्ट्रीय दुर्लभ रोग दिवस" के रूप में मनाया जाता है। अंतर्राष्ट्रीय दुर्लभ रोग दिवस 2008 में शुरू किया गया था। दुर्लभ रोग दिवस शुरूआत में एक यूरोपीय अभियान के तौर पर शुरू हुआ था लेकिन 2009 में अमेरिका द्वारा इसका सदस्य बनने के बाद से यह एक वैश्विक अभियान बन गया। विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार कोई रोग दुर्लभ तब कहलाता है जब 2000 में से कोई एक व्यक्ति उस रोग से प्रभावित होता है। आज करीब 8000 तक रोग चिन्हित किए गए हैं जिन्हें दुर्लभ रोग की श्रेणी में रखा जा सकता है। इन रोगों में से लगभग 80 प्रतिशत आनुवंशिक होते हैं।

दुर्लभ बीमारियाँ बहुत कम व्यक्तियों में देखी जाती हैं। जब कोई दुर्लभ बीमारी किसी विख्यात व्यक्ति को हो जाती है तो जाहिर है वह रोग भी जाना सुना हो जाता है। इसका सबसे बड़ा उदाहरण महान वैज्ञानिक स्टीफन हॉकिंग थे। वे 1963 में सिर्फ 21 साल के थे, जब उन्हें एमायोट्रॉफिक लैटरल स्क्लेरोसिस (ALS) नामक दुर्लभ बीमारी हो गई। इस न्यूरोडिजेनरेटिव स्थिति में दिमाग और मेरूरज्जु के मोटर नर्व सेल्स पर हमला होता है जिससे मांसपेशियों से संवाद और ऐच्छिक गतिविधियों पर नियंत्रण खत्म हो जाता है। ऐसा होने से पूरा शरीर लकवाग्रस्त हो जाता है और शरीर के अधिकतर अंग धीरे-धीरे काम करना बंद कर देते हैं। इस बीमारी से पीड़ित लोग आमतौर पर दो साल से पाँच साल तक ही जिंदा रह पाते हैं। लेकिन आश्चर्यजनक रूप से स्टीफन हॉकिंग कई दशकों तक जिए। विगत 14 मार्च 2018 को उनका निधन हुआ। उन्होंने 76 वर्ष की उम्र पायी। इस बीमारी के साथ इतने लंबे अरसे तक जिंदा रहने वाले स्टीफन हॉकिंग पहले शख्स थे। यह उनकी दृढ़ इच्छाशक्ति का परिणाम था। यद्यपि हॉकिंग का जीवन ह्वील चेयर तक सिमट गया था। लेकिन उनके शोध तथा चिंतन का दायरा विराट ब्रह्माण्ड था। ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति तथा विकास पर लिखी उनकी पुस्तक "ए ब्रीफ हिस्ट्री आफ टाइम", दुनिया की सर्वाधिक बिक्री वाली किताबों में शुमार की जाती है जिसकी अब तक करोड़ों प्रतियां बिक चुकी हैं। इसके अलावा और भी कई दुर्लभ बीमारियां हैं जैसे कि लायसोसोमल स्टोरेज डिसऑर्डर (एलएसडी), स्पाइनल मस्कुलर एट्रॉफी, ऐकलेज़िया कार्डिया, अनॉज्मिया (गंधज्ञानाभाव), डर्मेटोफेजिया, न्यूरोमायोटोनिया (आइजैक सिंड्रोम), ट्राईजेमिनल न्यूराल्जिया, प्रोजेरिया आदि। आंकड़ों के अनुसार भारत में सात करोड़ से भी ज्यादा लोग दुर्लभ बीमारियों से जूझ रहे हैं। इन दुर्लभ बीमारियों में कैंसर की दुर्लभ किस्मों तथा ऑटो इम्यून डिसऑर्डर से लेकर जन्मजात असामान्यता और संक्रमण से होने वाली बीमारियां

शामिल हैं। सबसे बड़ी चिंता की बात यह है कि इनमें से अधिकांश बीमारियों का पता लगाना बहुत मुश्किल है। इन बीमारियों के इलाज भी बहुत महँगे हैं।

कुछ प्रमुख दुर्लभ बीमारियाँ

प्रोजेरिया : प्रोजेरिया एक ऐसा रोग है जिसमें कम उम्र के बच्चों में भी बुढ़ापे के लक्षण दिखने लगते हैं। यह अत्यन्त दुर्लभ आनुवंशिक रोग है। इसे 'हचिंसन-गिलफोर्ड प्रोजेरिया सिंड्रोम' (HGPS), या हचिंसन-गिलफोर्ड सिंड्रोम' भी कहते हैं। यह बीमारी जीनों और कोशिकाओं में उत्परिवर्तन की स्थिति के चलते होती है। इस रोग का कारण अधिकांश लोग हॉर्मोन की गड़बड़ी मानते हैं। लेकिन नवीनतम शोध में इसके लिए लैमिन-ए (Lamin&A) जीन को ज़िम्मेदार बताया गया है। इस बीमारी से ग्रसित 90 फ़ीसदी बच्चों में इसका कारण लैमिन-ए जीन में आकस्मिक बदलाव का होना माना गया है। यह गड़बड़ी अचानक ही हो जाती है। यदि जीन में उत्परिवर्तन होने से लैमिन-ए प्रोटीन अस्थिर हो जाए तो कोशिका के केंद्रक का आकार बिगड़ जाता है। इस वजह से कोशिकाओं का आकार भी विरूपित हो जाता है और रोगी के जीन की सक्रियता समाप्त हो जाती है। नतीजतन प्रोटीन का स्थायित्व प्रभावित हो जाता है। यही वजह है कि रोगी का शारीरिक विकास नहीं हो पाता और रोगग्रस्त बच्चे अपनी वास्तविक उम्र के हिसाब से पांच-छह गुना बड़े दिखाई देने लगते हैं। प्रोजेरिया की बीमारी अचानक हो जाती है और 100 में से एक मामले में ही यह बीमारी अगली पीढ़ी तक जाती है। यह बहुत दुर्लभ बीमारी है जो क़रीब 80 लाख में से किसी एक व्यक्ति में पायी जाती है। आज तक चिकित्सा जगत में प्रोजेरिया के क़रीब 100 मामले सामने आए हैं। इस बीमारी में ज़्यादातर बदलाव त्वचा, धमनी और माँसपेशियों में ही देखे जाते हैं। इससे पीड़ित बच्चा आम बच्चों के मुक़ाबले तीन गुना तेजी से बुढ़ापे की ओर बढ़ता है। जन्म के समय से ही बच्चों में इस बीमारी की पहचान सम्भव है। जन्म के वक़्त इसका मरीज बिल्कुल सामान्य होता है, मगर उसकी नाक तराशी हुई होती है, चमड़ी के अंदर त्वचा जगह-जगह से मोटी तथा खुरदरी होती है। लेकिन डेढ़-दो साल की उम्र में इसके लक्षण

नजर आने लगते हैं। दो साल की उम्र पूरी करने के बाद प्रोजेरिया के रोगी के शरीर से वसा का क्षय होने से त्वचा पारदर्शी हो जाती है तथा बड़ी उम्र की बीमारियां जैसे- नजर की कमज़ोरी, मोतियाबिंद, सांस के रोग, किशोरावस्था में ही होने लगते हैं। शारीरिक अंगों का विकास रुक जाता है। शरीर ढीला पड़ जाता है और नसें उभरकर त्वचा पर साफ़ दिखाई देने लगती हैं। रक्त वाहिनियों में कड़ापन (ऐथेरोस्क्लीरोसिस) आ जाता है, साथ ही बच्चे की त्वचा का रंग पीला पड़ जाता है।

रोगी के चेहरे पर झुर्रियाँ पड़नी शुरू हो जाती हैं। झुर्रियाँ इस क़दर बढ़ती हैं कि रोगी की शक्ल चिड़ियों जैसी दीखने लगती है। त्वचा सम्बन्धी रोग (स्क्लेरोडर्मा) हो जाता है। शरीर में मोटे तौर पर हड्डियाँ और चमड़ी ही शेष रह जाती हैं। चेहरा और जबड़ा भी छोटा होता जाता है। सिर, शरीर के अनुपात में काफ़ी बड़ा हो जाता है और बाल झड़ जाते हैं। रोगी वृद्ध और एलियन (पराये ग्रह के प्राणी) जैसा दिखने लगता है। दाँत मुंह के बाहर आ जाते हैं तथा आंखों के आसपास गड्ढे हो जाते हैं। लैंगिक विकास नहीं होना, जोड़ों में दर्द, हड्डियों का विकास रुक जाना और हिप डिस्लोकेशन जैसी समस्याएं उत्पन्न हो जाती हैं। इतना ही नहीं जिस हृदय रोग को 35 वर्ष के बाद की व्याधि माना जाता है उसके दौरे अल्पायु में ही शुरू हो जाते हैं। अक्सर हृदयाघात की ही वजह से प्रोजेरिया पीड़ित की मौत होती है। कुछ साल पहले बॉलीवुड के महानायक अमिताभ बच्चन की फिल्म 'पा' आयी थी जिसमें उन्होंने 12 वर्ष के बच्चे का किरदार निभाया था जो प्रोजेरिया से पीड़ित था। मानसिक रूप से वह 12 वर्ष का बहुत ही सामान्य था, लेकिन शारीरिक रूप से अपनी आयु से पाँच गुना अधिक उम्र का दिखाई देता था। यह प्रोजोरिया से पीड़ित बच्चे के जीवन की चुनौतियों को दर्शाने वाली बड़ी रोचक फिल्म थी।

लायसोसोमल स्टोरेज डिस्ऑर्डर (LSD)

लायसोसोमल स्टोरेज डिस्आर्डर यह एक ऐसी दुर्लभ बीमारी है जिसमें मरीज का शरीर कई तरह की बीमारियों से ग्रसित हो जाता है। मरीज का दिमाग काम नहीं करता है, सिर और पेट बड़े होने लगते हैं। एलएसडी से पीड़ित रोगी अक्सर बहुत मुश्किलभरी जिंदगी बिताते हैं और उनके लिए रोजमर्रा के काम करना तक दूभर हो जाता है। इसमें सबसे ज्यादा चिंताजनक बात यह है कि एलएसडी के ज्यादातर रोगी बच्चे होते हैं। इसलिए उपचार के तंत्र को मजबूत करने के ठोस उपाय करने की जरूरत है। अधिक जोखिम वाले रोगियों की जेनेटिक काउंसिलिंग से बीमारी की पहचान तथा इलाज की चुनौतियों को दूर करने में मदद मिलती है।

अकलेज़िया कार्डिया

इस बीमारी में मरीज की आहारनली अवरूद्ध हो जाती है, जिससे भोजन पेट में न जाकर आहार नली में ही पड़ा रहता है। इससे ना सिर्फ मरीज के शरीर में पोषण की कमी होने लगती है बल्कि एक समय बाद यह भोजन आहार नली से निकल कर श्वास नली में भी पहुँचने लगता है जिससे मरीज को सांस लेने में तकलीफ होती है और खांसी की समस्या होने लगती है। यह एक डिजेनेरेटिव डिसीज है जिसमें मरीज की आहार नली के मुंह को खोलने वाली नसें काम करना बंद कर देती हैं। पहले इसका ऑपरेशन चीरा लगाकर किया जाता था। लेकिन अब तकनीकी विकास के चलते एंडोस्कोपी द्वारा इलाज किया जाता है। इसमें चीरा लगाने की जरूरत नहीं होती है।

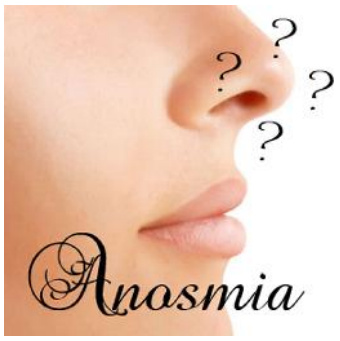

अनॉज्मिया

घ्राणशक्ति का नाश अर्थात् नाक से कोई गंध नहीं पता लगने को चिकित्सा विज्ञान की भाषा में अनॉज्मिया कहते हैं। अनॉज्मिया आमतौर तौर पर गंभीर नहीं होता है। लेकिन यह व्यक्ति की जीवन-शैली पर बुरा प्रभाव डालता है। यह अवसाद का कारण बन सकता है क्योंकि व्यक्ति की खाद्य पदार्थों के स्वाभाविक गंध तथा स्वाद लेने की क्षमता को प्रभावित करता है। सेंटर फॉर स्टडी ऑफ सेंसेज, लंदन के सहनिदेशक प्रोफेसर बैरी सी। स्मिथ कहते हैं, "अध्ययनों से पता चला है कि जो लोग सूँघने की क्षमता खो देते हैं, वह अन्धे हो गए लोगों से भी ज्यादा अवसाद का शिकार हो जाते हैं और लंबे समय तक इस स्थिति में बने रहते हैं। "अनॉज्मिया को ठीक किया जा सकता है या नहीं, यह इस बीमारी के होने की वजह पर निर्भर करता है। कुछ लोगों की गंध लेने की क्षमता में सुधार होता है तो कुछ लोग जीवन भर के लिए इससे वंचित रह जाते हैं।

डर्मैटोफेजिया

सुनने में यह बड़ा अजीब लग सकता है लेकिन चमड़ी को चबाना एक तरह का मनोविकार है। इसे डर्मैटोफेजिया कहते हैं। इससे पीड़ित रोगी सिर्फ किसी परेशानी या तनाव के कारण ही नहीं बल्कि अकारण भी अपनी त्वचा को चबाता रहता है। डर्मैटोफेजिया, ऑब्सेसिव कम्पल्सिव डिसआर्डर की वजह से होता है। इस बीमारी से पीड़ित व्यक्ति हमेशा अपने शरीर को लेकर बेचैन और चिंतित रहता है जिसकी वजह से वह धीरे-धीरे अपने शरीर की त्वचा को चबाना शुरू कर देता है। कई बार यह भी पाया गया है कि जिन माता-पिता को यह बीमारी है उनके बच्चों में भी इसके लक्षण दिखाई देते है। यानी यह एक आनुवंशिक बीमारी है। इसके अलावा जरूरत से ज्यादा तनाव और अकेलापन भी डर्मैटोफेजिया की वजह हो सकता है।

न्यूरोमायोटोनिया (आइजैक सिंड्रोम)

न्यूरोमायोटोनिया (आइजैक सिंड्रोम) एक दुर्लभ बीमारी है। दुनिया भर में 150 से भी ज्यादा लोगों के इसकी चपेट में होने के रिकार्ड मिलते हैं। मांसपेशियों की कठोरता, लगातार मांसपेशियों में ऐंठन, अधिक पसीना आना, असहनीय दर्द, मांसपेशियों में कमजोरी, उठने-बैठने में दिक्कत, कमजोरी महसूस करना, सांस लेने में दिक्कत आदि इस बीमारी के मुख्य लक्षण हैं। इस रोग से पीड़ित मरीज का चलना-फिरना मुश्किल होने की वजह से वह बिस्तर तक सीमित हो जाता है। जीन में अचानक आए बदलाव को इस बीमारी की वजह बताया जाता है। आमतौर पर 15 वर्ष से 60 वर्ष की उम्र तक यह बीमारी होती है। लेकिन 30 से 40 वर्ष की उम्र के बीच इसके लक्षण तेजी से उभरते हैं।

त्रिपृष्ठी तंत्रिकाशूल (ट्राईजेमिनल न्यूराल्जिया)

त्रिपृष्ठी तंत्रिकाशूल (ट्राईजेमिनल न्यूराल्जिया) एक दुर्लभ बीमारी है। इस बीमारी का चेहरे पर खासा प्रभाव पड़ता है। इसमें मांसपेशियों में गंभीर दर्द होता है। यह बीमारी तंत्रिका विकार के कारण उत्पन्न होती है। इसमें शरीर के नसों में जबरदस्त दर्द और ऐंठन होती है। ट्राईजेमिनल न्यूराल्जिया का सबसे ज्यादा प्रभाव सिर, जबड़ों और गालों पर होता है। ट्राईजेमिनल न्यूराल्जिया नसों को प्रभावित करने वाली ऐसी बीमारी है जो लगभग 15000 में से एक व्यक्ति को होती है। इसकी चपेट में उम्रदराज लोग ज्यादा आते हैं। ट्राईजेमिनल न्यूराल्जिया में पीड़ित व्यक्ति चेहरे के उस स्थान को आराम से चिन्हित कर सकता है जहां दर्द

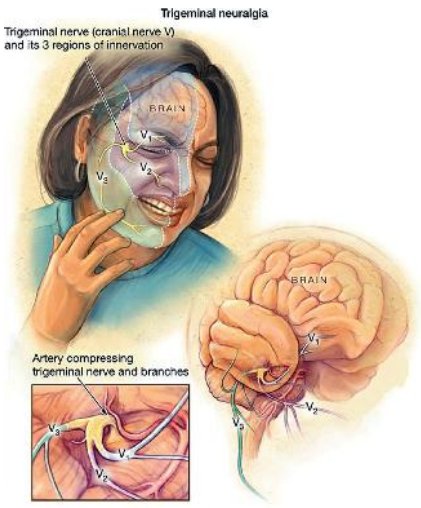

हो रहा है। ट्राईजेमिनल न्यूराल्जिया के दौरान हवा के तेज झोंके या फिर किसी के अचानक छू जाने से भी चेहरे के उस हिस्से में भीषण दर्द होने लगता है। खाते-पीते, बात करते, शेव करते समय भी दर्द परेशान कर सकता है। इस समस्या का एक कारण ट्यूमर या मल्टिपल स्क्लेरोसिस भी हो सकता है। कई बार इस रोग के कारणों का पता लगाना असंभव हो जाता है। ऐसे में इस स्थिति को 'इडियोपैथिक' कहा जाता है। इस बीमारी का इलाज दवाओं और सर्जरी, दोनों तरीकों से संभव है। लेकिन जितना ज्यादा दिन तक रोगी ट्राईजेमिनल न्यूराल्जिया से पीड़ित रहता है, दर्द से जुड़े तंत्रिका मार्गों को बदलना उतना ही मुश्किल हो सकता है। बॉलीवुड के सुप्रसिद्ध अभिनेता सलमान खान भी कथित तौर पर इस दुर्लभ बीमारी से पीड़ित हैं।

दुर्लभ बीमारी का निदान करने में कई साल लग सकते हैं। कई दुर्लभ बीमारियों में असहनीय दर्द, कमजोरी और चक्कर आना जैसे अनपेक्षित लक्षण होते हैं। इससे उनका इलाज करने में दिक्कत आती है। जेनेटिक परीक्षण कई दुर्लभ बीमारियों का निदान करने में मदद कर सकता है, लेकिन सभी मामलों में नहीं। जेनेटिक परीक्षण अनुमानतः 25-30 प्रतिशत मामलों में ही आनुवंशिक कारणों की पहचान कर पाता है। दुर्लभ बीमारियाँ किसी को भी हो सकती हैं, इसीलिए इन बीमारियों से ग्रस्त लोगों को इनका मुकाबला दृढ़ता से करना चाहिए। उन्हें कहीं न कहीं स्टीफन हॉकिंग जैसे व्यक्ति से प्रेरणा लेनी चाहिए, जो दुर्लभ बीमारी से पीड़ित होने पर भी अपनी जिजीविषा तथा जीवटता के चलते न केवल लंबे समय तक जीये, बल्कि विज्ञान जगत में उच्चतम सफलता पायी। असाध्य बीमारी से ग्रस्त होने के बावजूद अपनी अद्वितीय मेधा के चलते वे अपने जीवनकाल में एक जीवित किंवदंती बन गये थे। अतः बीमारी कोई भी हो, जरूरत इस बात की होती है कि उसका सामना साहस तथा दृढ़ इच्छाशक्ति से किया जाए। आत्मबल हमेशा विपरीत परिस्थितियों का मुकाबला करने में बहुत मददगार होता है। जाहिर है, बीमारियाँ भी इसका अपवाद नहीं हैं।

vigyan.lekhak@gmail.com

जलवायु परिवर्तन
समस्या और समाधान

डॉ. दिनेश मणि

डी.फिल. डी.एस-सी तक शिक्षा प्राप्त दिनेश मणि इलाहाबाद में रसायन विज्ञान के प्रोफेसर हैं। वे तीन दशकों से विज्ञान लेखक और विज्ञान संचारक की भूमिका में विज्ञान परिदृश्य पर विद्यमान हैं। उनकी हिन्दी में 50, अंग्रेजी में १० और 105 शोधपत्र प्रकाशित हैं। डॉक्टरेट हेतु बीस छात्रों का निर्देशन करने वाले दिनेश मणि को सरस्वती नामित पुरस्कार, बायोटेक हिन्दी ग्रन्थ पुरस्कार, सूचना प्रौद्योगिकी राष्ट्रीय, प्राकृतिक ऊर्जा पुरस्कार, अनुसृजन सम्मान, फैलोशिप अवार्ड, डॉ.सम्पूर्णानन्द नामित पुरस्कार, बाबूराव विष्णु पराड़कर नामित पुरस्कार, शताब्दी सम्मान, शिक्षा पुरस्कार, आत्माराम पुरस्कार, डॉ. जगदीश चंद्र बोस पुरस्कार, बाबू श्यामसुन्दर दास सर्जना पुरस्कार, इंदिरा गाँधी राजभाषा पुरसकार, सारस्वत सम्मान तथा आईसीएमआर पुरस्कार से सम्मानित किया गया है।

आज विश्वस्तरीय जलवायु परिवर्तन से सम्पूर्ण विश्व चिंतित है, शहरों के तेज गति से फैलाव से उसका असर और गहरा हो रहा है। विशेषकर भारत के सभी महानगर एवं छोटे शहर भी शहरीकरण से प्रभावित होते दिखाई दे रहे हैं। जलवायु परिवर्तन से सागर के किनारों पर बसे महानगरों में बाढ़ का खतरा हमेशा बना रहता है, ऋतु में बदलाव के कारण तापमान में वृद्धि हो रही है, जिससे ग्लेशियर पिघल रहे हैं तथा महासागरीय जल स्तर में वृद्धि हो रही है।

पृथ्वी के उद्भव से लेकर आज तक इसमें निरंतर परिवर्तन हो रहा है। परिवर्तन प्रकृति का नियम है। यह कभी तीव्र तो कभी मंद गति से होता है। कुछ परिवर्तन लाभकारी होते हैं, तो कुछ हानिकारक। स्मरण रहे, मानव पर प्रभाव डालने वाले तत्वों में जलवायु सर्वाधिक और प्रभावशाली है, क्योंकि यह पर्यावरण के अन्य कारकों को भी नियंत्रित करता है। सभ्यता के आरम्भ और उद्भव में जहाँ तक आर्थिक विकास का सम्बन्ध रहा है, जलवायु एक शक्तिशाली तत्व है।

मौसम के प्रमुख तत्वों- वायुदाब, तापमान, आर्द्रता, वर्षा तथा सौर प्रकाश की लम्बी अवधि के औसतीकरण (तीस वर्ष या अधिक) को उस स्थान की जलवायु कहते हैं, जो उस स्थान की भौगोलिक स्थिति (अक्षांश एवं ऊंचाई), सौर प्रकाश, ऊष्मा, हवाएं, वायुराशि, जल थल के आवंटन, पर्वत, महासागरीय धाराओं, निम्न तथा उच्च दाब पट्टियों, अवदाब एवं तूफान द्वारा नियंत्रित होती है।

करोड़ों वर्षों पूर्व जब पृथ्वी का निर्माण हुआ था, तब वह एक तपता हुआ गोला थी। धीरे-धीरे उस तपते हुए गोले से सागर, महाद्वीपों आदि का निर्माण हुआ। साथ ही पृथ्वी पर अनुकूल जलवायु ने मानव जीवन तथा अन्य जीव सृष्टि को जीवन दिया जिसमें तरह-तरह के जीव-जन्तु, पेड़-पौधे, विभिन्न वनस्पतियाँ और इन सबका जीवन-जीव-जन्तु, पेड़-पौधे, विभिन्न वनस्पतियाँ और इन सबका जीवन-अस्तित्व कायम रखने वाली प्रकृति का निर्माण हुआ। जलवायु पर्यावरण को विभिन्न प्रकार से प्रभावित करती है। प्राकृतिक वनस्पतियाँ, जीव-जन्तु तथा मनुष्य के कार्य कलाप पूर्णतः जलवायु की अवस्था पर ही निर्भर करते हैं। जिन फसलों से मनुष्य को भोजन प्राप्त होता है वे सभी अलग-अलग प्रकार की जलवायु पर निर्भर होती है। प्रत्येक फसल के लिये उचित तापमान, पर्याप्त वर्षा, धूप, मिट्टी मे उपलब्ध नमी आदि का पर्याप्त मात्रा में होना आवश्यक है। जलवायु के आधार पर ही प्राकृतिक वनस्पतियों का निर्धारण होता है, और इस पर ही मानव जीवन निर्भर करता है।

मनुष्य जीवन के प्रारम्भ में जल निर्मल था, वायु स्वच्छ थी, भूमि शुद्ध थी एवं मनुष्य के विचार भी शुद्ध थे। हरी-भरी इस प्रकृति में सभी जीव-जंतु तथा पेड़-पौधे बड़ी स्वच्छंदता से पनपते थे। चारों दिशाओं में ''वसुधैव कुटुम्बकम्'' का वातावरण था, तथा प्रकृति भली-भांति पूर्णतः संतुलित थी। किन्तु जैसे-जैसे समय बीता, मानव ने विकास किया और अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु उसने शुद्ध जल, शुद्ध वायु तथा अन्य नैसर्गिक संसाधनों का भरपूर उपभोग किया है। मनुष्य की हर आवश्यकता का समाधान निसर्ग ने किया, किन्तु बदले में मनुष्य ने प्रदूषण जैसी कभी

भी खत्म न होने वाली समस्या पैदा कर दी है। जल प्रदूषण, वायु प्रदूषण, भूमि प्रदूषण, औद्योगिक प्रदूषण, विकिरण प्रदूषण रूपी दैत्यों ने पृथ्वी की जलवायु को पूर्णतः बदल दिया है।

दुनिया भर में कहीं सुनामी की मार तो कहीं तूफान का कहर, कहीं खूब बारिश तो कहीं वर्षा के लिए हाहाकार, खाड़ी की बर्फबारी, स्पेन में शोलों की बारिश- इन सभी को जलवायु परिवर्तन की ही देन माना जा रहा है तथा सृष्टि के विनाश की ओर बढ़ते कदम अर्थात् महाप्रलय के रूप में देखा जा रहा है।

वैश्विक तापन और जलवायु परिवर्तन में अन्तर

प्रायः वैश्विक तापन और जलवायु परिवर्तन का एक ही अर्थ लगाया जाता है, परन्तु वास्तव में दोनों ही क्रियाएं अलग-अलग है। कार्बन डाई ऑक्साइड एवं कुछ अन्य गैसों की वायुमंडल में तेजी से वृद्धि हो रही है, जो सूर्य से आने वाली विकिरणों का अवशोषण कर लेती है और उन्हें वायुमण्डलीय परत के बाहर नहीं जाने देती हैं जिसके परिणामस्वरूप वायुमंडल के औसत तापमान में तेजी से वृद्धि हो रही है। इस क्रिया को वैश्विक तापन कहते हैं। दूसरी ओर वैश्विक तापन के कारण पृथ्वी के मौसम में असाधारण बदलाव हो रहा है, जैसे अतिवृष्टि, सूखा, बाढ़, धूल भरे तूफान, इत्यादि जिसे जलवायु परिवर्तन कहा जाता है।

जलवायु किसी स्थान के दीर्घकालीन वातावरण की दशा को व्यक्त करती है। जलवायु परिवर्तन के कारण अनेक पर्यावरणीय एवं पारिस्थितिकीय समस्यायें उत्पन्न हो रही है जिनका प्रभाव जनजीवन एवं सम्पूर्ण मानवता पर पड़ रहा है। विकास की दौड़ में हम यह भूल गए हैं कि हमारा भविष्य पर्यावरण अनुरक्षण पर निर्भर करता है।

किसी स्थान विशेष की औसत मौसमी दशाओं को जलवायु कहा जाता है, जबकि किसी स्थान विशेष की दैनिक वायुमण्डलीय दशाओं को मौसम कहा जाता है। इस तरह किसी स्थान की जलवायु एक तत्व से नहीं अपितु कई तत्वों द्वारा निर्धारित होती है। यथा- वर्षा, तापक्रम, आर्द्रता, आदि। इन सभी जलवायु तत्वों की मात्रा गहनता एवं वितरण में ऋतु अनुसार महत्वपूर्ण परिवर्तन होते रहते हैं। चूँकि धरातल पर एक क्षेत्र की मौसमी दशाएं दूसरे स्थान की मौसमी दशाओं से भिन्न होती

है अतः एक क्षेत्र की जलवायु दूसरे क्षेत्र की जलवायु से पूर्णतया भिन्न होती है, इसीलिए जितने स्थल होंगे उतने प्रकार की जलवायु का वर्गीकरण सरल नहीं है।

इसी तरह कोई ऐसा निश्चित मापदण्ड नहीं है जिसके आधार पर एक निश्चित रेखा द्वारा धरातल पर जलवायु प्रदेशों का निर्धारण हो सके, क्योंकि एक सीमा के बाद अग्रसर होने पर एक जलवायु प्रदेश के लक्षण समाप्त होने लगते हैं, जबकि दूसरे जलवायु प्रदेश के लक्षण शुरू हो जाते हैं। इसलिए दो जलवायु प्रदेशों के बीच एक संक्रमण जलवायु क्षेत्र भी पाया जाता है। वस्तुतः जलवायु प्रदेश का निर्धारण कुछ विशेष उद्देश्यों के लिए ही संतोषजनक एवं उचित होता है।

मौसम भले क्षण-क्षण बदले किन्तु जलवायु बदलने में हजारों क्या लाखों वर्ष लग जाते हैं। इसलिए जब मौसम की बात चलती है तो हम उतने चौकन्ने नहीं होते जितने कि बदलती जलवायु को लेकर। जलवायु किसी जीवधारी के समूचे वंश को प्रभावित कर सकती है और जलवायु में होने वाले परिवर्तन जीव-जन्तुओं के समूचे वंशों को समाप्त कर सकते हैं।

किसी स्थान का मौसम ही अन्ततः उस स्थान या क्षेत्र की जलवायु का निर्माण करता है। वैसे जलवायु परिवर्तन कोई नवीन घटना नहीं है। प्रकृति में ऐसे परिवर्तन लाखों वर्षों से होते रहे है, जिनकी अब स्मृति ही शेष है, किन्तु ये परिवर्तन यह बताते हैं कि प्रकृति के ऊपर किसी का वश नहीं है उसकी अपनी कार्य शैली है। वह सदय भी है और क्रूर भी।

जलवायु को नियंत्रित करने वाले दो प्रमुख कारक होते हैं- ताप तथा वर्षा। ताप का स्रोत सूर्य है। सूर्य पृथ्वी से अनन्त दूरी पर है किन्तु वह पृथ्वी को अपने विकिरणों से कभी तप्त बनाता है तो कभी शीतल।

वर्षा भी सूर्य के द्वारा नियंत्रित होती है। सूर्य के आतप से पृथ्वी के तीन चौथाई भाग में फैले महासागर जब गर्म होते हैं तो उनका पानी वाष्प बनकर वायुमण्डल में बादल के रूप में मंडरा कर वर्षा करता है। वर्षा के कारण पृथ्वी के ताप में कमी आती है।

भारत की जलवायु मानसूनी वर्षा से व्यापक रूप से प्रभावित होती है। मानसून से बहुतेरे लोगों पर प्रभाव पड़ता है। भारतीय कृषि मुख्यतः मानसून पर ही निर्भर होती है। मानसून के आने में कुछ दिनों की देरी से देश की अर्थव्यवस्था पर प्रतिकूल प्रभाव की आशंका बनी रहती है। अच्छी वर्षा का सीधा संबंध अर्थव्यवस्था की बेहतरी से होता है। कमजोर मानसून अथवा वर्षा का अभाव अर्थात सूखा, कृषि को चौपट कर देता हे। इससे न केवल देश में खाद्यान्न और अन्य खाद्य पदार्थों का अभाव पैदा हो जाता है बल्कि हमारा आर्थिक विकास भी बाधित होता है।

भारतीय ग्रीष्मकालीन मानसून वैश्विक जलवायु तंत्र का एक प्रमुख घटक है। भारत में हर साल जितनी वर्षा होती है उसका अधिकांश भाग दक्षिण पश्चिम (ग्रीष्मकालीन) मानसून से आता है जो जून से सितम्बर के बीच पड़ता है। साल-दर-साल इनमें तरह-तरह की विभिन्नता (यानी मानक विभिन्नता) दिखाई देती है। इसी का नतीजा है कि अखिल भारतीय स्तर पर ग्रीष्मकालीन मानूसन की वर्षा कुल औसत लगभग 89 सेंटीमीटर के दस प्रतिशत के बराबर है। ऐतिहासिक रिकार्ड से साबित होता है कि 68 प्रतिशत से अधिक मानसून सामान्य रहने के आसार कम होते है। लेकिन अगर इसमें दस प्रतिशत की कमी हुई तो अनावृष्टि (अकाल) हो सकता है।

वायुमण्डल और जलवायु

पृथ्वी का वायुमण्डल ही पृथ्वी के तापमान को एक सीमा के भीतर बनाये रखने के लिए जिम्मेदार है। यदि पृथ्वी का वायुमण्डल नहीं होता तो पृथ्वी का तापमान बहुत कम होता और पृथ्वी पर बर्फ ही बर्फ होती। तब तरल रूप में पानी भी न होता। इसका अर्थ यही हुआ कि पृथ्वी पर किसी प्रकार के जीवन की सम्भावना भी नहीं रहती।

पृथ्वी के वायुमण्डल में कई ऐसे पदार्थ हैं जो सूर्य से पृथ्वी की ओर आने वाली ऊर्जा को आसानी से आने देते हैं, फलतः इस ऊर्जा से

पृथ्वी पर की सारी वस्तुएं गरम होती रहती हैं। फिर वे वस्तुएं तापीय ऊर्जा उत्सर्जित करती हैं। यह ऊर्जा मुख्यतः अवरक्त विकिरण के रूप में होती है।

समुद्र और जलवायु

समुद्र उष्मा को संचित करके उसे पृथ्वी के चारों ओर गतिमान करते हैं। इस तरह वे जलवायु को रूप देते हैं। समुद्र गैसों के विशेष रूप से कार्बन डाई ऑक्साइड के प्रमुख स्रोत होने के साथ ही संग्रह भी हैं। यह कार्बन डाई ऑक्साइड जलवायु को प्रभावित करती है। वस्तुतः समुद्र तथा वायुमण्डल मिलकर पृथ्वी के जलवायु तंत्र की रचना करते है। पृथ्वी समुद्रों की अपेक्षा जल्दी गर्म और जल्दी ठंडी हो जाती है, किन्तु समुद्र दीर्घकाल तक उष्मा ग्रहण करते हैं और संचित उष्मा को दीर्घकाल तक बाहर निकालते रहते हैं। अतः जब पृथ्वी की सतह सूर्य द्वारा गरमाती है या ठंडी होती है तो पृथ्वी पर ताप परिवर्तन समुद्रों की अपेक्षा ज्यादा और अधिक तेजी से होता है।

जब समुद्र का कोई भाग अधिक गर्म या शीतल हो जाता है, तो उसे पृथ्वी की अपेक्षा सामान्य स्थिति पर पहुँचने में काफी समय लगता है। यही कारण है कि समुद्र तटों पर जलवायु उतनी तीक्ष्ण नहीं होती जितनी कि भीतरी भू-भाग में महाद्वीपी क्षेत्रों में।

सौर ऊर्जा, पादप प्रजातियों या वायुमण्डल में ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन से वायुमण्डल, समुद्री तन्त्र का ताप तथा परिसंचारण पैटर्न बदलता है। समुद्री धाराएं भी तटीय क्षेत्रों की जलवायु पर प्रभाव डालती हैं। समुद्रों का जल प्रबल धाराओं के द्वारा निरंतर गतिशील बना रहता है। सतही धाराएं पवन प्रेरित होती हैं, यद्यपि पृथ्वी के परिभ्रमण तथा महाद्वीपों की उपस्थिति का भी प्रभाव पड़ता है। किन्तु समुद्र की गहराइयों में उष्मन तथा शीतलन एवं वर्षा तथा वाष्पन के कारण, घनत्व में अन्तर के कारण धाराएं चलती हैं।

सागरीय धाराएं उष्मा का वहन करके जलवायु को प्रभावित करती हैं। क्षैतिज धाराएं जो उत्तर से दक्षिण की दिशा में गति करती है, वे उष्ण या शीतल जल को हजारों किलोमीटर दूर तक ले जाती है। इस तरह विस्थापित जलवायु को गर्म या ठंडा करके उस भूभाग को भी ठंडा या गर्म कर सकता है, जिसके ऊपर यह वायु चलती है।

जलवायु पर अक्षांश का प्रभाव

अक्षांश अर्थात् विषुवत रेखा से दूरी का किसी स्थान की जलवायु पर प्रभाव पड़ता है। जो स्थान विषुवत रेखा के जितना निकट होगा, वह उतना ही गर्म होगा जो स्थान विषुवत रेखा से जितनी अधिक दूरी पर होगा, वह उतना ही ठंडा होगा। यही कारण है कि ध्रुवों की जलवायु अत्यधिक ठंडी होती है। किन्तु अक्षांश के अलावा समुद्र तल से ऊँचाई समुद्र से निकटता तथा वानस्पतिक आच्छादन का भी जलवायु पर प्रभाव पड़ता है। हम जितनी ही ऊँचाई पर जाते हैं, ताप घटता जाता है। ऐसा अनुमान है कि ऊँचाई में सौ मीटर की वृद्धि से ताप छः डिग्री से. की कमी आती है, इसीलिए विषुवत रेखा के निकट तमिलनाडु में जलवायु उष्ण कटिबंधीय है- गर्म तथा नम होती है किन्तु यदि हम किसी पहाड़ी स्थान पर चले जायं तो जलवायु ठंडी तथा सुहावनी होगी। किन्तु इसके अपवाद भी हैं जैसे लद्दाख जो अत्यधिक ऊँचाई पर स्थित है, किन्तु यहां पर ग्रीष्म ऋतु गर्म रहती है- कारण कि यह प्लेटो पर स्थित है- सूर्य की ऊर्जा ताप को बढ़ाती है, किन्तु रातें ठंडी होती हैं।

वैश्विक तापन एवं मानसून वर्षा

वायु के तापमान में वृद्धि होने से उसकी आर्द्रता धारण करने की क्षमता में वृद्धि होती है, जिससे वायु पहले की तुलना में अधिक जलवाष्प को धारण कर लेती है, दक्षिण-पश्चिम मानसून सागरों के ऊपर से आती है जहां ग्रहण करने के लिए पर्याप्त जलवाष्प होती है। अधिक जल धारण करने की क्षमता एवं अधिक जल की उपलब्धता अधिक वर्षा की संभावनाओं को बढ़ा देती है। यदि अनुकूल वर्षा दशाएं उपलब्ध हों तो अधिक जलवाष्प युक्त हवाएं असाधारण रूप से अधिक वर्षा कर देती हैं।

जलवायु परिवर्तन किसी अचानक आई विपदा की भांति प्रभावी न होकर धीरे-धीरे पृथ्वी और यहाँ रहने वाले जीवों के लिए प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से अनेक समस्याओं को जन्म देती है। जलवायु परिवर्तन का आशय तापमान, बारिश, हवा, नमी जैसे जलवायुवीय घटकों में दीर्घकाल के दौरान होने वाले परिवर्तनों से है। जलवायु परिवर्तन का तात्पर्य उन बदलावों से है जिन्हें हम लगातार अनुभव कर रहे हैं।

अब इस बात में कोई दो राय नहीं रह है कि जलवायु में बदलाव हो रहा है और मानवीय गतिविधियाँ इसका एक कारण हैं। आज उन संकेतों को झुठलाना संभव नहीं है जो हमारी पृथ्वी की बेचैनी को व्यक्त कर रहे हैं। आईपीसीसी (इंटरगवर्नमेंटल पैनल ऑन क्लाइमेट चेंज) सहित अनेक वैश्विक संस्थाओं की रिपोर्टों ने जलवायु परिवर्तन की पुष्टि की है। इस रिपोर्ट से यह बात बिल्कुल स्पष्ट हो चुकी है कि पृथ्वी का औसत तापमान बढ़ता जा रहा है। सन् 1961 तथा 1990 के बीच पृथ्वी का औसत तापमान लगभग 14 डिग्री सेल्सियस था। वर्ष 1998 में यह 0.52 डिग्री सेल्सियस अधिक यानी 14.52 डिग्री सेल्सियस दर्ज किया गया था। जलवायु बदलाव का वैश्विक संकट लगातार बढ़ रहा है।

निश्चित तौर पर, हम पिछले किसी भी कालखंड की तुलना में एक बेहतर व भौतिकतावादी दुनिया में रहते हैं लेकिन यह नई दुनिया हमें पर्यावरण के दोहन की कीमत पर मिली है। यह विडंबना ही है कि जब मानव समाज विकसित नहीं था तब पर्यावरण प्रदूषित नहीं था और आज हम विकास की ओर कदम बढ़ा रहे हैं तो पर्यावरण भी दिनोंदिन प्रदूषित होता जा रहा है। इस समय विकसित देशों की चमक और उनकी उपभोक्तावादी दृष्टिकोण को अपनाने की होड़ में, प्राकृतिक संसाधनों पर दबाव बढ़ने लगा है जिससे समस्त पर्यावरण प्रभावित हो रहा है। वास्तव में विकास बुरा नहीं लेकिन उसके हित अपनाए जाने वाला तरीका पर्यावरण हितैषी नहीं है। इसलिए मानव को प्रकृति के दोहन करने की नीतियों को बदलना होगा तभी वह जलवायु परिवर्तन की समस्या से उभर सकेगा।

dineshmanidsc@gmail.com

मरुस्थल

दुश्वारियों के साथ अनोखा भी

डॉ.मनीष मोहन गोरे

मनीष मोहन गोरे विज्ञान प्रसार दिल्ली में वैज्ञानिक के पद पर कार्यरत हैं। वे विज्ञान लेखन के क्षेत्र में विज्ञान कथा और लेख दोनों ही लिखते रहे हैं किन्तु इधर के दो-तीन वर्षों में उन्होंने देशभर के वरिष्ठ विज्ञान लेखकों की साक्षात्कार-शृंखला तैयार की है। विज्ञान लेखन, विज्ञान संचार और विज्ञान जिज्ञासाओं को ध्यान में रखकर उन्होंने जिन वैज्ञानिकों से बातचीत की वह काफी चर्चा में रहे। हमें खुशी है कि 'इलेक्ट्रॉनिकी आपके लिये' में हम उन वार्ताओं को नियमित प्रकाशित कर सके हैं।

'मरुस्थल' या 'रेगिस्तान' का नाम आते ही मन में एक रेतीले, बंजर और उजाड़ मरुभूमि की छवि उभरती है। निस्संदेह, यहां का पर्यावरण प्रतिकूल और जीवन दुरूह होता है परंतु ये हमारी पृथ्वी के अनोखे भौगोलिक क्षेत्र हैं। यहां पाई जाने वाली जैवविविधता अद्भुत होती है। इस आलेख में मरुस्थल की अनोखी दुनिया और यहां के जीवों में पाए जाने वाले प्राकृतिक अनुकूलन तथा पर्यावरण से उनके रिश्तों के बारे में चर्चा की जाएगी।

गर्म ही नहीं ठंडे भी होते हैं रेगिस्तान

मरुस्थल के संबंध में यह आम धारणा है कि ये एक बंजर और धूप से तपती भूमि होती है, मगर वास्तव में मरुस्थल केवल गर्म नहीं बल्कि ठंडे भी होते हैं। पृथ्वी की भूमध्य रेखा पर आने वाले हिस्सों में गर्म रेगिस्तान पाए जाते हैं। यहां दिन का तापमान 38 डिग्री सेंटीग्रेड से ज्यादा रहता है जबकि रातें बेहद ठंडी हो जाती हैं। कैलीफोर्निया के मरुस्थल जिसे मौत की घाटी कहते हैं, वहां दिन का अधिकतम तापमान 57 डिग्री सेंटीग्रेड तक दर्ज किया गया है। रेत के टीले बनना यहां की सामान्य विशेषता होती है। दिन और रात के तापमान में भारी अंतर की वजह से पत्थर टूटकर रेत में बदल जाते हैं। भारत में जैसलमेर गर्म मरुस्थल का एक महत्वपूर्ण उदाहरण है।

वहीं दूसरी तरफ ठंडे मरुस्थल भूमध्य रेखा से दूर पर्वतीय इलाकों में पाए जाते हैं। जाड़े के मौसम में ये इलाके बर्फ से ढंक जाते हैं। अन्टार्कटिका ठंडे मरुस्थल के सर्वश्रेष्ठ उदाहरण हैं। हमारी धरती ही नहीं, सौरमंडल के मंगल ग्रह पर भी मरुस्थल और रेत के टीलों के प्रमाण मिले हैं। मंगल ग्रह के मरुस्थल ठंडे मरुस्थल हैं। इस ग्रह के टोही अंतरिक्ष यान "रोवर" से यहां के मरुस्थल की तस्वीर मिली है। वैसे आमतौर पर सूखापन हर एक मरुस्थल की खासियत होती है और इसके पीछे मुख्य वजह बारिश की कमी होती है। प्रति वर्ष सौ मिलीमीटर से कम बारिश से मरुस्थल बनते हैं। अब बारिश कम होने पर यहां की मिट्टी में पानी सरककर बहुत नीचे को चला जाता है और जो कुछ थोड़ा बहुत पानी धरती की सतह पर होता है, वह चिलचिलाती धूप और गर्मी के चलते वाष्पित होकर वायुमंडल में उड़ जाता है। यहां दिन में गर्मी इतनी की रोटी सिंक जाए और रात में ठंड इस कदर कि बर्फ जम जाए। ऐसे विकट हालात में इन मरुस्थल में कोई जीवन की कल्पना भला कैसे कर सकता है? लेकिन यह बात आश्चर्यजनक है कि मरुस्थल की विकट जलवायु और विपरीत पर्यावरण के बावजूद यहां पर अद्भुत जैवविविधता देखने को मिलती है।

अद्भुत जैवविविधता

मरुस्थल में रहने वाले पौधे और जंतु अपने जीवन के लिए शुष्क पर्यावरण के साथ जद्दोजहद करते हैं। यहां के धुरंधर जीवों ने मरुस्थल के पर्यावरण के मुताबिक अपने शरीर, व्यवहार और जैविक क्रियाओं को ढाल लिया है। विज्ञान की भाषा में इसे अनुकूलन कहते हैं। मरुस्थली पौधों के बीज उचित बारिश होने तक गर्मी और सूखे को झेलते हैं। कभी-कभी तो ये बीज कई साल तक बारिश का इन्तजार करते रहते हैं और अनुकूल पर्यावरण और बारिश के होने पर ही अंकुरित होते और पनपते हैं। मरुस्थल में बीज अंकुरण और उसके बाद पौधे का विकास छह से आठ सप्ताह के अंदर हो जाता है।

नागफनी और दूसरी प्रजातियों के मरुस्थली पौधे अपने शरीर में पानी को संचित रखते हैं और यह व्यवहार पानी की किल्लत से निपटने में उनकी मदद करता है। कुछ मरुस्थली पौधे दिखने में इतने बेजान और पथरीले होते हैं कि देखकर कोई नहीं कह सकता कि इनमें जीवन है। लिथोप्स ऐसा ही एक मरुस्थली पौधा है जो पत्थर की तरह दिखता है। इसमें एक जोड़ी गोलाकार पत्तियां होती हैं जिनमें पानी संचित रहता है। इनकी पत्तियां पत्थर की तरह दिखती हैं जिससे जानवर भ्रम में पड़ जाते हैं और इन्हें नहीं खाते हैं।

अब चूंकि मरुस्थल में सूरज की रोशनी तो जरूरत से ज्यादा होती है लेकिन पानी की भारी किल्लत रहती है। हरे पौधों को प्रकाश संश्लेषण संपन्न करने के लिए सूरज की रोशनी के साथ पानी की जरूरत होती है ताकि वे ऊर्जा और भोजन निर्माण कर सकें। अब मरुस्थली पौधों को तो कम पानी में जीवित रहने की आदत होती है इसलिए इनकी जड़ें पानी की तलाश में मिट्टी में बहुत गहरे चली जाती हैं। अब इतनी मुश्किल के बाद पानी मिल तो जाता है लेकिन इसे पौधे अगर सहेज कर न रख पाए तो जीना दूभर हो जाता है। इसके लिए प्रकृति ने इन्हें दो विशेष व्यवस्थाएं दी हैं। एक तो इनकी पत्तियों की सतह पर छोटे आकार वाले और कम संख्या में रंध्र (स्टोमेटा) पाए जाते हैं। ये स्टोमेटा पत्तियों पर मौजूद सूक्ष्म छिद्र होते हैं जिनसे होकर पानी, आक्सीजन और कार्बन डाईआक्साइड का आवागमन होता रहता है। जिस पर्यावरण में पानी प्रचुर मात्रा में होता है, वहां के पेड़-पौधों में ये स्टोमेटा बड़े आकार के और बड़ी संख्या में पाए जाते हैं। लेकिन मरुस्थल में पानी की ज्यादा हानि न हो इसके लिए पौधों की पत्तियों में ये कम संख्या में और भीतर की ओर धँसे हुए होते हैं। अनेक मरुस्थली पौधों ने पत्तियों को काँटों में रूपांतरित कर डाला है जैसे कि नागफनी। कई पौधे पानी की क्षति को रोकने के लिए गर्मी के मौसम में निष्क्रिय रहते हैं और उनकी पत्तियाँ झड़ जाती हैं। बारिश का मौसम आने पर वे तेजी से पनपते हैं। उनमें पत्तियां और फल-फूल आते हैं।

नागफनी और दूसरी प्रजातियों के मरुस्थली पौधे अपने शरीर में पानी को संचित रखते हैं और यह व्यवहार पानी की किल्लत से निपटने में उनकी मदद करता है। कुछ मरुस्थली पौधे दिखने में इतने बेजान और पथरीले होते हैं कि देखकर कोई नहीं कह सकता कि इनमें जीवन है। लिथोप्स ऐसा ही एक मरुस्थली पौधा है जो पत्थर की तरह दिखता है। इसमें एक जोड़ी गोलाकार पत्तियां होती हैं जिनमें पानी संचित रहता है। इनकी पत्तियां पत्थर की तरह दिखती हैं जिससे जानवर भ्रम में पड़ जाते हैं और इन्हें नहीं खाते हैं। नामिब के रेगिस्तान में वेल्विशिया (Welwitschia) नामक एक मरुस्थली पौधा पाया जाता है। इसकी तीन हजार प्रजातियों की पहचान वनस्पति वैज्ञानिकों ने की है। ये पौधे बहुत लम्बे समय तक जीवित रहते हैं और इनमें अनेक प्रकार के महत्वपूर्ण औषधीय गुण पाए जाते हैं। इन पौधों में पानी संचित करने की अद्भुत प्राकृतिक क्षमता होती है। वर्तमान समय में यह मरुस्थली पौधा दुर्लभ हो चला है।

अगर हम ठंडे मरुस्थल को देखें तो वहां के हालात भी कुछ ज्यादा बेहतर नहीं होते। ठंडे मरुस्थल की मिट्टी में लवण की उच्च सांद्रता पाई जाती है। घास और छोटी झाड़ियां यहां पाए जाने वाले मुख्य पौधे होते हैं। इन मरुस्थल की धरती रंग बिरंगे लाइकेन से ढंकी रहती है। अधिकतर झाड़ियों की पत्तियां कंटीली होती हैं।

मरुस्थल में जीवन की जद्दोजहद

यह सवाल हमेशा लोगों के मन में उभरता है कि मरुस्थल के प्रतिकूल पर्यावरण में छोटे-बड़े जंतु कैसे अपना गुजर-बसर करते हैं। यहां पर जीवित रहने के लिए इन्हें भोजन और पानी के अलावा गर्मी का प्रकोप भी झेलना पड़ता है। एक बात तो स्पष्ट है कि मरुस्थल के भीषण तापमान का असर पौधों से ज्यादा जन्तुओं पर होता है क्योंकि इनके शरीर की कोशिकाएं उचित तापमान पर ही ठीक प्रकार से काम कर पाती हैं। अगर तापमान अधिक हो जाता है तो इन जन्तुओं की मौत तक हो सकती है। इसलिए मरुस्थल के अधिक तापमान और सूखेपन से बचने के लिए यहां रहने वाले जंतु अनेक प्रकार के अनुकूलन उपाय अपनाते हैं।

मरुस्थल में पाए जाने वाले छोटे अकशेरुकी जंतु जैसे कि मक्खी, भृंग, चींटी, दीमक, टिड्डे, बिच्छू और मकड़ियां अपने शरीर की बाहरी त्वचा यानी कि क्यूटिकल पर एक मोम जैसा पदार्थ उत्सर्जित करते हैं। यह पदार्थ शरीर के अंदर मौजूद पानी को बाहर वाष्पित होने से रोकता है। इस उपाय से इन जंतुओं के शरीर से पानी की क्षति रुक जाती है। ये अपने अंडे भी भूमि के नीचे गड्ढों में देते हैं, जहां का तापमान बाहरी तापमान से काफी कम रहता है। कुछ स्तनधारी जंतु जैसे कि रेगिस्तानी गिलहरी यहां की गर्मी से बचने के लिए ग्रीष्म सुप्तावस्था में चले जाते हैं। इसमें वे भूमि के अंदर जाकर निष्क्रिय हो जाते हैं। इस प्राकृतिक व्यवहार से उनके दिल की धड़कन, श्वसन और

दूसरी जैविक क्रियाएं मंद पड़ जाती हैं, जिसके नतीजे के रूप में उनकी पानी की खपत घट जाती है। सांप और चूहे जैसे प्राणी रात्रिचर होते हैं। मरुस्थल में ये दिन के समय ठंडे और नम सुरंगों में सुस्त पड़े रहते हैं और रात के समय जब तापमान कम हो जाता है तो अपने आहार की तलाश में सुरंगों से बाहर निकलते हैं।

रेत के टीले अनेक प्रजाति की मकड़ियों, बिच्छुओं, छिपकलियों, और छोटे स्तनधारी जीवों के प्राकृतिक आवास होते हैं। कुछ छिपकलियों की त्वचा का रंग अलग-अलग तापमान पर बदलता रहता है। कुछ छिपकलियां और सांप गर्म रेत में एक विशेष तरह की ग्लाइडिंग करते हुए आगे बढ़ते हैं। आपको आश्चर्य होगा कि इस कलाबाजी से इनके शरीर का ज्यादातर हिस्सा गर्म रेत के संपर्क में आने से बच जाता है।

रेगिस्तान का जहाज 'ऊंट'

मरुस्थल की बात चले और ऊंट की बात न हो, ऐसा नहीं हो सकता। ऊंट एक स्तनधारी प्राणी है और इसने मरुस्थली पर्यावरण के मुताबिक अपने शरीर और आदतों को अच्छी तरह ढाल रखा है। यह जानवर सान्द्र मूत्र और शुष्क मल के उत्सर्जन से पानी की क्षति होने से रोकता है। इसको लेकर एक गलत धारणा है कि यह अपने कूबड़ में पानी जमा करके रखता है और जरूरत होने पर उसे इस्तेमाल करता रहता है। हां, वैज्ञानिक तौर पर यह सच है कि ऊंट लंबे समय तक बिना पानी के जीवित रह सकते हैं क्योंकि इनके शरीर की कोशिकाओं में तापमान और पानी की कमी को कुछ हद तक सहन करने की प्राकृतिक क्षमता होती है। इस जंतु के कूबड़ में चर्बी जमा होती है जिसकी उपापचयी क्रिया (मेटाबोलिक एक्शन) से शरीर में पानी की कमी पूरी होती है। इनकी टांगें लंबी होती हैं जिससे इनका शरीर गर्म रेत के संपर्क में नहीं आता और रेगिस्तान के जहाज कहलाने वाले ये विशाल स्तनधारी शान से गर्म रेत में घंटों बिना रुके चलते रहते हैं। मरुस्थली पक्षी भी इस प्रतिकूल वातावरण में अपने अस्तित्व को बचाने के लिए कई तरह के प्रयास करते हैं। आमतौर पर ये पक्षी शरीर में जल संतुलन को बनाए रखने के लिए एक लवण ग्रंथि का उपयोग करते हैं। समय समय पर ये पक्षी ओस या अन्य स्रोतों से पानी ग्रहण करते रहते हैं। मरुस्थल की कष्टदायक परिस्थितियों से बचने के लिए तुलनात्मक रूप से कम गर्म इलाकों में भी ये उड़कर चले जाते हैं।

रेगिस्तान का विस्तार: खतरे की घंटी

रेगिस्तान की जैवविविधता आज खतरे में है। शिकार और पर्यटन जैसी मानवीय गतिविधियां इसके लिए प्रमुख रूप से जिम्मेदार हैं। मरुस्थल के आस-पास खनिज हासिल करने के उद्देश्य से यहां पर खनन की गतिविधियां भी चलाई जाती हैं। जिनसे यहां की वनस्पतियों और जंतुओं के जीवन पर बुरा असर होता है। रेगिस्तान को नष्ट करने से पहले हमें यह जरूर सोचना चाहिए कि ये हमारी पृथ्वी के एक अद्भुत प्राकृतिक आवास हैं, जहां अनेक प्रकार के जीव पाए जाते हैं। हमें नहीं भूलना चाहिए कि रेगिस्तान आसानी से क्षतिग्रस्त हो जाते हैं और फिर यहां रहने वाले जीवों का अस्तित्व खतरे में पड़ जाता है।

mmgore@vigyanprasar.gov.in

डॉ. पुरुषोत्तम चक्रवर्ती का जन्म 11 जुलाई 1937 को ग्वालियर में हुआ। एम.एस-सी., पी.एच-डी., साहित्य विशारद और धर्म विशारद उपाधि प्राप्त डॉ. पुरुषोत्तम चक्रवर्ती के 100 शोध पत्र, चार रिव्यू प्रकाशित हैं। आपके नेतृत्व में 12 पी.एच-डी. की गईं। विज्ञान लेखन के अतिरिक्त आपका हिन्दी साहित्य लेखन में महत्वपूर्ण योगदान है। विज्ञान और मानव, कथा द्रव्य की, प्राचीन भारत में वैज्ञानिक चिंतन आपकी चर्चित कृतियां हैं। विश्वविद्यालयों के लिये आपने पाठ्य-पुस्तक लेखन किया। श्रेष्ठ विज्ञान शिक्षक, श्रेष्ठ विज्ञान पाठयपुस्तक लेखक, फीचर लेखक, शंकरदयाल शर्मा सृजन सम्मान, अनुसृजन सम्मान, तैलंग कुलम पुरस्कार और विभूति सम्मान से अलंकृत डॉ. पुरुषोत्तम चक्रवर्ती ने इस पुस्तक में द्रव्य की अवस्थाओं का गहन अध्ययन किया है। रसायनशास्त्र द्रव्य का विज्ञान है। द्रव्य क्या है? यह पदार्थों में किस रूप में उपस्थित है? रसायन के क्षेत्र और महत्व को यदि आँका जाये तो हम कहेंगे रसायन विज्ञान उन द्रव्यों का अनुसंधान करता है जिसके द्वारा ब्रह्मांड बना है। पुस्तक में संवाद शैली के माध्यम से दैनिक जीवन में उपयोग में आने वाली वस्तुओं का रसायन विज्ञान भली-भाँति समझाया गया है।

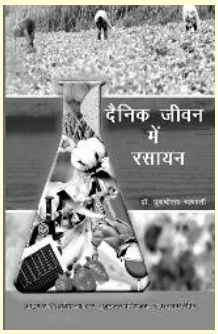

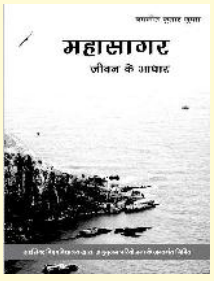

नवनीत कुमार गुप्ता ने एम.एससी. विज्ञान संचार तक शिक्षा ग्रहण की और विज्ञान प्रसार से संबद्ध हुए। आपका जन्म 15 अगस्त 1982 को पचौर जिला रायगढ़ में हुआ। अब तक आपने जैव विविधता संरक्षण एवं जलवायु परिवर्तन तथा पर्यावरण संरक्षण के प्रति जागरूकता संबंधी 10 पुस्तकें लिखीं। साथ ही 11 पुस्तकों का संपादन तथा अनेक लेखों का अनुवाद किया। राजीव गांधी ज्ञान-विज्ञान लेखन पुरस्कार, मेदनी पुरस्कार, राजभाषा पुरस्कार, श्रीतरूशनपाल पाठक स्मृति बाल विज्ञान पुरस्कार से सम्मानित नवनीत कुमार गुप्ता ने महासागरों की विशेषताओं की संक्षिप्त जानकारी के साथ पृथ्वी ग्रह को सुन्दर और जीवनदायी ग्रह बनाए रखने में इनकी पर प्रकाश डाला गया है। महासागरों के अनोखेपन से परिचित कराने के साथ ही महासागरों एवं सागरों को प्रदूषणरहित बनाए रखने की आवश्यकता पर ध्यान आकर्षित किया गया है।

जीन एडिटिंग

जन्म से पहले बीमारी का उपचार

प्रमोद भार्गव

प्रमोद भार्गव एक पत्रकार और विज्ञान संचारक के रूप में देशभर में जाने जाते हैं वहीं उनका दूसरा पक्ष एक लोकप्रिय कथाकार का भी है। समकालीन परिदृश्य और समसामयिक विषयों जिनमें विज्ञान भी शामिल है, पर प्रमोद भार्गव की गहरी नज़र रहती है। वे तात्कालिक विज्ञान-अनुसंधान और हलचल पर लिखने के लिये खासे चर्चित हैं। प्रमोद भार्गव म.प्र. के शिवपुरी में निवास करते हैं।

प्रत्येक नूतन प्राणी पुरातन का नवीनतम संस्करण होता है। इसका अपना नया रंग-रूप और मौलिक विलक्षणताएं होती हैं। बावजूद इनमें कई मनुष्य वंशानुगत बीमारियां लेकर पैदा होते हैं। ऐसी बीमारियों को कोशिका के स्तर पर ही दूर करने के चमत्कार का नाम है, जीन एडिटिंग, यानी, वंशानुगत संशोधन करके पैदा किए गए बच्चे ! चीनी वैज्ञानिक एवं प्राध्यापक हे जियानकुई ने जीन यानी डीएनए कुंडली में बदलाव करके जुड़वां बालिकाओं के जन्मने का दावा किया है। चीन के विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विश्व विद्यालय में प्रोफेसर जियानकुई ने ये बच्चियां नवंबर 2018 के अंतिम सप्ताह में पैदा की हैं।

वंशाणु परिवर्धन की यह तकनीक 'क्लस्टर्ड रेगुलरली इंटरस्पेस्ड शॉर्ट पैलिनड्रोमिक रिपीट्स' (सीआरआईएसपीआर) कहलाती है। इस तकनीक के माध्यम से एक जीनोम से आनुवंशिक तत्व निकालकर उसे दूसरे जीनोम में डाला जाता है। डीएनए में यह परिवर्धन कोशिका के स्तर पर ही कर लिया जाता है। इस बदलाव की विशेषता यह है कि यदि संतान के माता-पिता में कोई बीमारी है तो वह इस परिवर्तन से दूर हो जाती है। अपने प्रयोग को इस दृष्टि से सिद्ध करने के लिए जियानकुई ने दावा किया है कि उन्होंने एचआईवी (एड्स) संक्रमित पिता की जीन कुंडली में बदलाव करके ये बच्चियां पैदा की हैं। इस प्रयोग के लिए उनके पास स्वेच्छा से आठ दंपति उपस्थित थे। इनमें पिता तो एड्स पीड़ित थे, किंतु माताएं इस सक्रमित रोग से मुक्त थीं। इस तरह से संतान पैदा करने का उद्देश्य एचआईवी विषाणु से नई संतान को इस वंशानुगत रोग से छुटकारा दिलाना है। इस प्रयोग में जियानकुई कितने सफल हुए हैं, यह तो भविष्य में ज्ञात होगा, क्योंकि प्रयोग फिलहाल शैशव-अवस्था में है। इसीलिए प्रयोग के सामने आते ही दुनियाभर में विवाद भी खड़ा हो गया है।

चीन इससे पहले जीन संशोधन के जरिए चूहे पैदा करने और क्लोन पद्धति से दो बंदरों के निर्माण का दावा भी कर चुका है। इस नाते मानना होगा कि वह कृत्रिम-मानव निर्माण की दिशा में निरंतर प्रगति कर रहा है। कोशिका से एड्स का विषाणु अलग करने के लिए जीन संशोधन के इस प्रयोग में विशिष्ठ तकनीक क्रिस्पर-कैश-9 अपनाई गई है। इस तकनीक को हम आणविक या अणु-कैंची भी कह सकते हैं। डीएनए में प्रवाहित विषाणु या जीवाणु को इसी कैंची से काटकर पृथक किया गया। यह तकनीक कैश-9 नामक एंजाइम के प्रयोग से काम करती है। यह डीएनए के किनारे पर जमा रहता है। इस प्रक्रिया को पूरी करने के लिए आरएनए अणु की भूमिका दिशा-निदेशक के रूप में रहती है। जीन में इस तरह से किए बदलाव से इच्छा के अनुसार बच्चे पैदा करना संभव है। इसीलिए इन्हें 'डिजाइनर बच्चे' कहा गया है। इस प्रयोग की सफलता से यह उम्मीद जगी है कि वैज्ञानिक निकट भविष्य में भ्रूण में इतने परिवर्तन करने में सक्षम हो जाएंगे कि लाइलाज बीमारियां बच्चे के जन्म से पहले ही समाप्त हो जाएंगी। साथ ही भ्रूण के स्तर पर ही बच्चों में जीन के मार्फत अतिरिक्त बुद्धि डालना भी मुमकिन हो जाएगा। लेकिन ये प्रयोग परिणाम के रूप में कितने सफल रह पाते हैं, यह इन बच्चियों के युवा होने पर ही पता चलेगा।

जीन एडिटिंग को समझने से पहले मानव-जीनोम को समझना होगा। इनमें जीवन के रहस्य छिपे हुए हैं। इसीलिए इसे जीन कुंडली भी कहा जाता है। मानव-जीनोम तीन अरब रासायनिक रेखाओं का तंतु है। अमेरिका के क्रेग वेंटर एवं फ्रांसिस कोलिंस ने मानव-जीनोम की

संरचना को वर्ष 2000 में ही पढ़ लिया था। इसमें डीएनए (डिऑक्सीरिबोन्यूक्लिक एसिड) जो जीवन की आधारभूत संजीवनी है, असंख्य अणुओं की प्रक्रिया को समझा और दुनिया के वैज्ञानिक समूहों के सामने डीएनए की रहस्यमयी सरंचना का प्रगटीकरण किया। इसके पहले यह अवधारणा थी कि मनुष्य की जटिलतम जीवन-सरंचना में एक लाख से अधिक जीन या डीएनए के तंतु गतिशील हैं। यही शरीर की प्रत्येक क्रिया व प्रक्रिया के लिए दिमाग में संकेतों का डंका पीटते हैं। लेकिन इन वैज्ञानिकों ने अपने शोध के निष्कर्ष में दावा किया कि मानव शरीर में केवल तीस हजार जीन हैं। चूहे के शरीर में भी लगभग इतने ही जीन होते हैं। कुछ विशेष जीनों को छोड़ दिया जाए तो मनुष्य और चूहे में एक जैसे जीन होते हैं। इसीलिए मनुष्य की आंतरिक संरचना को समझने के लिए सबसे ज्यादा प्रयोग चूहे पर ही किए गए हैं। इन जीनों के व्यवहार और प्रभाव की पड़ताल जैसे-जैसे गति पकड़ती जाएगी, बीमारियों पर नियंत्रण का सिलसिला कोशिका के स्तर पर ही दूर होता जाएगा। इसीलिए जीन एडिटिंग के जरिए चिकित्सा क्षेत्र में क्रांति आने की संभावनाएं बढ़ रही हैं।

इसी अनुसंधान से यह भी ज्ञात हुआ है कि दुनिया के सभी मनुष्यों में जितने भी वंशानुगत जीन हैं, वे आश्चर्यजनक रूप में 99.99 प्रतिशत एक समान हैं। इसीलिए वैज्ञानिक यह दावा करते रहे हैं कि हम-सब एक ही माता-पिता की संतानें हैं। अब वे हिंदू सनातन परंपरा के परिप्रेक्ष्य में मनु-शतरूपा हैं या ईसाई व इस्लामिक परंपरा के हिसाब से आदव व हौवा हैं, यह कहना मुश्किल है ? हाल ही में अमेरिका के वैज्ञानिक मार्क स्टोकल और डेविड थॉलर का पचास लाख पशुओं और मानवों के डीएनए के बार कोड परखने का अध्ययन सामने आया है। इसमें दावा किया गया है कि हम एक ही स्त्री व पुरुष की संतानें हैं। जो एक से दो लाख साल पहले कहीं पृथ्वी पर रहा करते थे। इन्हीं से मानव सभ्यता फली-फूली और फैली। इन वैज्ञानिक द्वय ने अपने शोध की सफलता के लिए मनुष्यों की एक लाख प्रजातियों समेत करीब पचास लाख पशुओं के आनुवांशिक सरंचना के डीएनए और वंशानुओं को खंगाला। इस अध्ययन में यह भी पाया गया कि हर दस में से नौ प्राणियों का जन्म व विकास एक ही माता-पिता से हुआ है। इस अध्ययन में यह भी दावा किया है कि सभी जीवों की 90 प्रतिशत प्रजातियां आज भी अस्तित्व में हैं। इन वैज्ञानिकों ने यह अध्ययन डॉर्विन के विकासवाद के सिद्धांत से अभिप्रेरित होकर किया। हिंदू धर्म में जो दशावतारों की आवधारणा हैं, वह भी इन्हीं सिद्धांतों व धारणाओं के अनुरूप है।

बहरहाल, जीन में अधिकतम परिवर्तन नर प्रजातियों में होते हैं, इसीलिए नरों को बदलाव का वाहक माना गया है, इसीलिए वही आनुवांशिक बीमारियों के भी वाहक होते हैं। जीन विज्ञान में आनुवंशिक संरचना का उत्तरोत्तर ज्ञान में वृद्धि होते जाने से यह समझ भी विकसित हुई है कि ढाई करोड़ साल पहले कैसे हम वनमानुष से मानव में तब्दील हुए?

चीन में जीन एडिटिंग से चूहों और क्लोन से बंदरों का निर्माण

चीन में जीन एडिटिंग के जरिए दो बच्चियों को पैदा करने से पहले दो चूहों को भी पैदा किया जा चुका है। चीनी वैज्ञानिकों ने 2018 में ही वंशाणु-परिवर्धन और भ्रूणीय स्तंभ कोशिकाओं (एंब्रायोनिक स्टेम सेल) की मदद से दो चुहियों की संतान पैदा करने में कामयाबी प्राप्त कर ली है। स्टेम सेल जर्नल में प्रकाशित शोध के मुताबिक, इस तकनीक के जरिए 210 भ्रूण में से 29 संतानों को जन्म दिया गया। ये सभी पूरी तरह स्वस्थ व चैतन्य थे। अपनी पूरी उम्र तक जीवित रहे और इनकी संतानें भी जन्मीं। चाइनीज विज्ञान अकादमी के शोधकर्ताओं ने कहा है कि दो चूहों से एक संतान पैदा करने का प्रयोग भी पहले किया जा चुका है, किंतु यह संतान ज्यादा दिन जीवित नहीं रही।

इस शोध की विलक्षणता यह भी है कि एक ही लिंग के जीवों से संतान की उत्पत्ति में क्या चुनौतियां हैं? साथ ही स्तंभ कोशिकाओं और वंशाणु परिवर्धन तकनीक की मदद से इन चुनौतियों से कैसे पार पाया जा सकता है? अकादमी के शोधकर्ता क्वी झोऊ का इस संदर्भ में कहना है कि 'हम इस सवाल के प्रति उत्सुक थे कि स्तनपायी जीवों में यौन संबंधों से ही संतान की उत्पत्ति क्यों होती है। अनेक अध्ययन व प्रयोगों से आखिर में हमने यह पाया कि स्तंभ कोशिका और जीन-संवर्धन की मदद से दो नर या दो मादा चूहों से संतति की उत्पत्ति संभव है। जीन विलीन करने की तकनीकों की मदद से पहले भी दो चुहियों से एक संतान पैदा की गई थी, लेकिन उसमें कुछ कमियाँ रह गई थीं। जिन्हें बाद में वैज्ञानिकों ने हैप्लॉयड एंब्रायोनिक स्टेम सेल की सहायता से प्रयोग को परिणाम तक पहुँचाया। हालांकि कुछ सरीसृप व उभयचर जीवों और मछलियों में केवल नर या मादा से संतान पैदा करने के प्रयोग सफल हो चुके हैं। बावजूद स्तनधारी जीवों में कृत्रिम रूप से संतान पैदा करने की यह प्रक्रिया बेहद जटिल है। वैसे भी सभी अलग-अलग खूबियों को देखते हुए, अब भी वैज्ञानिक इस बात को लेकर निश्चिंत नहीं हैं कि यह तकनीक चूहों के अलावा अन्य स्तनपायी जीवों पर कितनी फलदायी सिद्ध होती है।

इससे पहले चीनी वैज्ञानिकों ने साल 2018 की शुरूआत में ही क्लेनिंग द्वारा दो बंदरों के निर्माण का खुलासा किया था। इस उपलब्धि से यह संभव हुआ है कि हम मनुष्य का क्लोन से निर्माण करने की दिशा में निरंतर आगे बढ़ रहे हैं। चाइनीज इंस्टीट्यूट ऑफ न्यूरोसाइंस के वैज्ञानिकों ने बंदर की त्वचा से ली गई स्तंभ कोशिकाओं को भ्रूण अवस्था में लाकर बंदरों को अस्तित्व में लाए हैं। स्तंभ कोशिकाएं ऐसी विलक्षण कोशिकाएं होती हैं, जो विभाजित होने के बाद शरीर की किसी भी विशिष्ट कोशिका के रूप में विकसित होने की क्षमता रखती हैं। बाईस साल पहले डॉली नामक भेड़ का उत्सर्जन इस तकनीक से किया गया था। इसके बाद से वैज्ञानिकों ने मेंढक, भेड़, कुत्ता, सुअर, बिल्ली, चूहे, खरगोश और गाय समेत बीस से अधिक जैव-प्रजातियों को क्लोन से उत्पत्ति का दावा किया है।

किंतु इस प्रयोग से पहले मानव या मनुष्य से मेल खाने वाली जीवों का क्लोन बनाना असंभव था, क्योंकि किसी भी प्राणी की कायिक कोशिका (सोमोटिक सेल) के केंद्रक (न्यूक्लियस) का स्थानांतरण आसान नहीं है। दरअसल कायिक कोशिका वह अलिंगी प्रक्रिया है, जिसे अमल में लाकर किसी की प्राणी की प्रतिकृति निर्मित करने की कल्पना की गई है। चीनी वैज्ञानिकों ने इस परिप्रेक्ष्य में प्रकारांतर से आने वाले मकैक प्रजाति के बंदरों के क्लोन तैयार करके 'हुआ-हुआ' और 'झोंग-झोंग' बंदरों को अवतरित करने का चमत्कार कर दिया। इस शोध से जुड़े वैज्ञानिकों का कहना है कि उनका मकसद एक जैसे जींस के बंदरों का निर्माण करना था, जिससे मनुष्य के लिए जरूरी दवाओं का परीक्षण किया जा सके। इस सफलता से हृदय रोग और पार्किंसन जैसे रोगों के उपचार की संभावनाएं बढ़ जाएंगी।

महाभारत में जीन एडिटिंग

महाभारत एक ऐसा अनूठा ग्रंथ है, जिसमें अनेकों प्रश्नों के उत्तर अथवा संकेत मिलते हैं। कहा तो यहां तक जाता है कि वर्तमान का ऐसा कोई प्रश्न नहीं, जिसका उत्तर महाभारत में न हो। चीन के वैज्ञानिक हे जियानकुई ने वंशाणु-परिवर्धन यानी जेनेटिक इंजीनियरिंग के द्वारा दो बालिकाओं को पैदा करने का दावा किया है। जीन एडिटिंग एक ऐसी तकनीक है, जिसके जरिए भविष्य में इच्छित संतान पैदा करने की संभावनाएं बढ़ गई हैं। महाभारत में सत्यवती के गर्भ से महर्षि जमदग्नि और सत्यवती की मां की कोख से विश्वामित्र के जन्म की विधि, जीन एडिटिंग के जरिए संतान पैदा करने के संकेत देती है। इसी तरह वेदव्यास ने गांधारी के गर्भपात हुए मांस-पिंड से एक सौ शिशुओं को जन्मा, जो कौरव कहलाए।

सत्यवती राजा गाधि की पुत्री थीं और ऋषि ऋचीक की पत्नी। जब सत्यवती को कोई संतान नहीं हुई तो ऋषि भृगु ने कृत्रिम तरीके से संतान पैदा करने का उपाय किया। इसी समय सत्यवती ने भृगु से निवेदन किया कि उनका कोई भाई नहीं है, इसलिए उनकी मां को भी संतान के रूप में लड़का पैदा होने का उपाय करें। तब भृगु ने विभिन्न औषधियों से युक्त दो चरू (घड़े) तैयार किए। इनमें से सत्यवती की मां को क्षत्रीय गुणों से संपन्न पुत्र होने की सरंचना की और सत्यवती के लिए वेदज्ञ पुत्र होने के गुण-सूत्रों की रचना की। सत्यवती की मां को यह शंका हुई कि उनके जामाता ऋचीक चूंकि भृगु-कुल से हैं, इसलिए भृगु ने सत्यवती को श्रेष्ठ पुत्र होने का उपाय किया होगा। तद्नुसार मां ने चालाकी बरतते हुए जब कृत्रिम रूप से संतान पैदा करने का समय करीब आया तो बेटी सत्यवती के लिए निश्चित की गई, चरू में रखी औषधि खा ली और सत्यवती को अपने निमित चरू की औषधि खिला दी। फलस्वरूप सत्यवती के गर्भ से जमदाग्नि का जन्म हुआ और उनकी मां की कोख से विश्वामित्र जन्मे। बाद में इन्हीं जमदग्नि से परशुराम का जन्म हुआ।

महाभारत में जीन एडिटिंग से जुड़ा दूसरा प्रसंग धृतराष्ट्र की पत्नी और कौरवों की माता गांधारी का है। गांधारी गर्भवती हुई तो नौ माह पूरे होने से पहले उसे गर्भपात हो गया। इस गर्भपात में मांस का पिंड बाहर निकला। इसकी तुरंत सूचना महर्षि वेद व्यास को दी गई। व्यास तत्काल आए और उन्होंने अतिशीघ्र सौ मटके मंगाकर उन्हें औषधियुक्त घी से भरा और मांस-पिंड को शीतल जल से सींचा। सींचने की प्रक्रिया के चलते मांस-पिंड एक सौ टुकड़ों में विभाजित हो गया। ये टुकड़े अंगूठे के पोरूवे के बराबर थे। इन टुकड़ों को चरुओं में डालकर उनके मुख बंद कर दिए गए। इन्हें दो वर्ष तक के लिए अंधेरे, शीतल व सुरक्षित स्थान पर रखवा दिए। व्यास ने धृतराष्ट्र व गांधारी को आश्वस्त किया कि इन सौ मटकों से सौ पुत्र जन्मेंगे।

इतना कहकर व्यास तो चले गए, परंतु कुछ दिनों बाद ही गांधारी को इनमें से एक को पुत्री के रूप में प्राप्त करने की इच्छा हुई। गोया व्यास दोबारा आए। उन्होंने एक पोरूवे के अंश में कुछ वंशाणु संबंधी बदलाव किए और फिर मटके का ढक्कन बंद कर चले गए। तय अवधि पूरी होने पर निन्यानवे मटकों से पुत्र और एक मटके से पुत्री जन्मी, जिसका नाम दुःशाला रखा गया। ये उपाय जीन एडिटिंग और क्लोन पदातियों के ही अनुरूप हैं। इन्हें गल्प या मिथक कहना भूल है।

शरीर में देखने, सुनने, सूंघने और स्वाद जानने की जो इंद्रियां हैं, उनके रहस्यों तथा वे कैसे क्रियाशील रहकर शारीरिक प्रक्रिया में अपना दायित्व निभाती हैं, यह भी पता चलता है। इनकी प्रक्रिया की समझ विकसित हो जाने से ही वंशानुगत बीमारियों को आरंभिक अवस्था में ही दूर करने की चिकित्सा पद्धतियां विकसित हो रही हैं। जीन एडिटिंग की प्रगति के साथ हजारों रोगजन्य विकृतियों को दूर करने का मार्ग प्रशस्त होगा। ऐसा माना जाता है कि शरीर में 15 हजार बीमारियां पैदा होती हैं। परंतु इनमें से अभी चिकित्सा विज्ञान पांच हजार बीमारियों को ही जान पाया है। इनमें से भी ज्यादातर की उपचार प्रणालियां एंटिबायोटिक दवाओं पर केंद्रित हैं।

एचआईवी, एड्स से इतर जीन आधारित तीस बीमारियों का अब तक पता चल चुका है। इनमें स्तन कैंसर, वंशानुगत अंधापन और मिर्गी जैसी बीमारियां शामिल हैं। अमेरिका और दक्षिण कोरिया के वैज्ञानिकों ने 2017 में छपी 'सांइस' पत्रिका में हृदय की धमानियों में चर्बी बढ़ाने वाली जीन की खोज कर उसे जीन एडिटिंग के जरिए दूर करने का दावा किया है। इसे भी वंशाणु परिर्धन प्रौद्यौगिकी कैश-9 से ही पृथक किया गया है। वंशानुगत बीमारी के रूप में जो कैंसर एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में आता है, उसे भी भविष्य में कोशिका के स्तर पर ही ठीक कर दिया जाएगा। व्यक्ति की वंशानुगत सरंचना से यदि यह पता चल जाए कि फलां

व्यक्ति को मधुमेह या सीजोफ्रेनिया जैसी मानसिक बीमारियां हो सकती हैं, तो जीन में बदलाव कर इन्हें जड़-मूल में समाप्त करने की उम्मीद बढ़ जाएगी। लेकिन दमा, रक्तचाप और हड्डी के जोड़ों के दर्द व उनमें तरल द्रव्यता की कमी को किसी जीन का कारण नहीं माना जाता है, इसलिए इन रोगों का इलाज नामुमकिन ही रहेगा। शराब व अन्य नशीलें पदार्थों की लत को भी जीन-थैरेपी से दूर करने का दावा किया जा रहा है।

इस प्रयोग के सामने आते ही इससे नैतिकता और प्रकृति की सरंचना में अनैतिक छेड़छाड़ के प्रश्न भी उठ खड़े हुए हैं। भारत में ये सवाल इसलिए महत्वपूर्ण हैं, क्योंकि अल्ट्रासोनोग्राफी जैसी तकनीक के भारत में आने के बाद पुरुष के अनुपात में स्त्रियों की संख्या घटी है। इस असमानता ने हमारे यहाँ बलात्कार जैसी मानसिक विकृति को बढ़ाया है। जिस तरह से लड़का पैदा करने की चाहत हमारे सामाजिक मनोविज्ञान में श्रेष्ठ मानी जाती है, उसी तर्ज पर गोरे रंग-रूप और गठीले शरीर व ऊंची कद-काठी की इच्छा भी प्रत्येक माता-पिता अपनी पैदा होने वाली संतान में करता है। जीन परिवर्तन से कुशाग्र बुद्धि के बच्चे भी पैदा करने के दावे किए जा रहे हैं। यानी जो व्यक्ति आर्थिक रूप से संपन्न हैं, भविष्य में उनके बच्चे ही कुशाग्र बुद्धि के होंगे? ये ऐसी कुछ शंकाएं हैं, जो विषमता को बढ़ाने वाली होंगी। फिर भी मानव-प्रजातियों को रोग-मुक्त करने या श्रेष्ठम रूप में ढालने के जो भी उपाय वंशाणु परिवर्धन से सामने जा सकते हैं, उन्हें सामने आना चाहिए। भारत में भी इस दृष्टि से डीएनए संरचना विधेयक लंबित है। यह विधेयक संसद के दोनों सत्रों से पारित हो जाता है, तो जीन या डीएनए बैंक का रास्ता खुल जाएगा, जिनमें प्रत्येक व्यक्ति की जीन आधारित कुंडली का संग्रह किया जाएगा।

pramod.bhargava15@gmail.com

अब गुब्बारे करेंगे सैटेलाइट का काम

विजन कुमार पाण्डेय

अब वो दिन दूर नहीं जब आप गुब्बारों में बैठकर अंतरिक्ष की सैर करेंगे। गुब्बारा ही सैटेलाइट का काम करेगा। यह एक सस्ता सौदा होगा जिसके जरिए हमारा नेटवर्क काम करेगा। अभी भारत इस क्षेत्र में बहुत दिलचस्पी नहीं ले रहा है लेकिन अमेरिका और चीन इस दिशा में तेजी से आगे बढ़ रहे हैं। आपको मालूम ही होगा कि भारत के सबसे वज़नी सैटेलाइट जीसैट-11 को यूरोपीय स्पेस एजेंसी के प्रक्षेपण केंद्र फ़्रेंच गयाना से अंतरिक्ष में भेज दिया गया। भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संस्थान (इसरो) के मुताबिक़ जीसैट-11 का वज़न 5,854 किलोग्राम है। यह जियोस्टेशनरी सैटेलाइट पृथ्वी की सतह से 36 हज़ार किलोमीटर ऊपर ऑरबिट में रहेगा। सैटेलाइट इतना बड़ा है कि इसका हर सोलर पैनल चार मीटर से ज़्यादा लंबा है, जो एक सेडान कार के बराबर है। जीसैट-11 में केयू-बैंड और केए-बैंड फ़्रीक्वेंसी में 40 ट्रांसपोंडर होंगे, जो 14 गीगाबाइट/सेकेंड तक की डेटा ट्रांसफ़र स्पीड के साथ हाई बैंडविथ कनेक्टिविटी दे सकते हैं। जीसैट-11 कई मायनों में ख़ास है। ये भारत में बना अब तक का सबसे भारी कम्युनिकेशन सैटेलाइट है। भारी सैटेलाइट का मतलब ये नहीं है कि वो कम काम करेगा। यहाँ भारी होने का मतलब बहुत ताक़तवर और लंबे समय तक काम करने वाला है। यह सबसे ज़्यादा बैंडविथ वाला उपग्रह भी है, जिससे पूरे भारत में इंटरनेट की सुविधा मिल सकेगी। पहले जीसैट-11 को इसी साल मार्च-अप्रैल में भेजा जाना था लेकिन जीसैट-6ए मिशन के नाकाम होने के बाद इसे टाल दिया गया। 29 मार्च को रवाना जीसैट-6ए से सिग्नल लॉस की वजह इलेक्ट्रिकल सर्किट में गड़बड़ी पायी गई थी। ऐसी आशंका थी कि जीसैट-11 में भी यही दिक़्क़त आ सकती है, इसलिए इसकी लॉन्चिंग को रोक दिया गया था। इसके बाद कई टेस्ट किए गए। फिर पांच दिसम्बर को भारतीय समयानुसार दो बजकर आठ मिनट पर इसे अंतरिक्ष में भेजा गया। इसरो के पास क़रीब चार टन वज़नी सैटेलाइट को भेजने की क्षमता है लेकिन जीसैट-11 का वज़न छह टन के क़रीब है। इसलिये इसे फ़्रेंच गयाना में यूरोपियन स्पेसपोर्ट से भेजा गया। वैसे इसरो अभी खुद भारी सैटेलाइट भेजने पर विचार नहीं कर रहा है लेकिन कुछ साल बाद जब सेमी-क्रायोजेनिक इंजन तैयार हो जाएगा, तब ऐसा सम्भव हो पाएगा।

इस सैटेलाइट से इंटरनेट स्पीड तो तेज़ नहीं होगी क्योंकि वो आपको ऑप्टिकल फ़ाइबर से मिलती है। लेकिन इस सैटेलाइट से कवरेज के मामले में फ़ायदा होगा। जो दूरदराज़ के इलाक़े हैं, वहां इंटरनेट पहुंचाने में फ़ायदा होगा। कई ऐसी जगह हैं, जहाँ फ़ाइबर पहुँचाना आसान नहीं होता, वहाँ इससे इंटरनेट पहुँचाना आसान हो जाएगा। इसके एक और फ़ायदा ये है कि जब कभी फ़ाइबर को नुक़सान होगा, तो इंटरनेट पूरी तरह बंद नहीं होगा और सैटेलाइट के ज़रिए वो चलता रहेगा। इसरो अपने जीएसएलवी-3 लॉन्चर की वज़न उठाने की क्षमता पर भी काम कर रहा है। जीसैट-11 असल में हाई-थ्रूपुट कम्युनिकेशन सैटेलाइट है, जिसका उद्देश्य भारत के मुख्य क्षेत्र और आसपास के इलाक़ों में मल्टी-स्पॉट बीम कवरेज मुहैया कराना है। ये सैटेलाइट इसलिए इतना ख़ास है कि यह एक साथ कई सारे स्पॉट बीम इस्तेमाल करता है, जिससे इंटरनेट स्पीड और कनेक्टिविटी बढ़ जाती है। स्पॉट बीम के मायने सैटेलाइट सिग्नल से हैं, जो एक ख़ास भौगोलिक क्षेत्र में फ़ोकस करती है। बीम जितनी पतली होगी, पावर उतना ही ज़्यादा होगी। ये सैटेलाइट पूरे देश को कवर करने के लिए

विजन कुमार पाण्डेय लोकप्रिय विज्ञान लेखक हैं और शिक्षा के क्षेत्र से जुड़े हैं। उन्होंने विगत तीन दशकों में तीन सौ से अधिक लेख लिखे हैं। 'इलेक्ट्रॉनिकी आपके लिए' में वे नियमित रूप से प्रकाशित होते रहे हैं। देश के प्रतिष्ठित विज्ञान पत्रिकाओं में आपकी रचनाओं की कई-कई पाठक हैं जो आपके काम को रेखांकित करते रहते हैं।

बीम या सिग्नल को दोबारा इस्तेमाल करता है। इनसैट जैसे पारंपरिक सैटेलाइट ब्रॉड सिग्नल बीम को इस्तेमाल करती है, जो पूरे इलाक़े को कवर करने के लिए काफ़ी नहीं है। इसलिए अब भारत भारी भरकम सैटेलाइट अंतरिक्ष में भेज रहा है, लेकिन अब यह सौदा बहुत महँगा पड़ रहा है। क्योंकि अगर किसी मिशन में सफलता नहीं मिली तो करोड़ों का नुकसान हो जाता है। इसलिए अब वैज्ञानिक सस्ते रास्ते खोज रहे हैं जिससे हम ऐसे आर्थिक क्षति से बच सकें। अब भविष्य में ऐसे गुब्बारे छोड़े जाएंगे जो हमारे नेटवर्किंग साइटों को चलाने में सहयोगी बनेंगे।

गुब्बारों की स्पेस रेस

सबसे पहले 1958 में रूस ने स्पुतनिक नाम के सैटेलाइट को अंतरिक्ष भेजकर दुनिया में तहलका मचा दिया था। आनन-फ़ानन में अमेरिका ने भी अपनी स्पेस एजेंसी नासा का गठन किया। शीत युद्ध के दौरान चली स्पेस रेस में आख़िरकार अमेरिका ने रूस को मात दे दी। आज की तारीख़ में अंतरिक्ष की बात करें, तो अमेरिका दुनिया की सबसे बड़ी ताक़त है। स्पुतनिक लॉन्च हुए काफी समय बीत चुके हैं। स्पेस रेस अब अलग ही पैमानों पर हो रही है। अब बड़े से बड़े सैटेलाइट लॉन्च करने के बजाय गुब्बारों से अंतरिक्ष में नई छलांग लगाई जा रही है। दरअसल गुब्बारे, अंतरिक्ष में बहुत काम के हो सकते हैं। धरती से क़रीब तीस किलोमीटर की ऊंचाई पर इन्हें स्थापित कर के संचार और निगरानी के साथ इंटरनेट सेवाएं देने का काम लिया जा सकता है। किसी उपग्रह के मुक़ाबले ये गुब्बारे बहुत सस्ते पड़ते हैं। ज़रूरत पड़ने पर इन्हें आसानी से मरम्मत के लिए वापस धरती पर भी लाया जा सकता है। लेकिन सेटेलाइट के साथ ऐसा नहीं किया जा सकता है। अंतरिक्ष में गुब्बारे भेजने की शुरुआत नासा ने 50 के दशक में की थी। आज अमेरिकी एजेंसी गुब्बारों का इस्तेमाल वायुमंडलीय रिसर्च में करती है। इससे धरती पर निगाह रखी जाती है और ब्रह्मांड से आने वाली किरणों का अध्ययन किया जाता है। कई गुब्बारे तो मशहूर सेंट पॉल के गिरजाधर से भी सात गुना बड़े हैं। ये प्लास्टिक से बने होते हैं और इनकी मोटाई सैंडविच के बराबर होती है। इन गुब्बारों में हीलियम गैस भरी जाती है। दरअसल गुब्बारों के साथ दिक़्क़त ये है कि यह

अपनी जगह से उड़कर दूसरी जगह जाने लगते हैं। धरती के ऊपर जो वायुमंडल है उसका सबसे ऊपरी हिस्सा स्ट्रैटोस्फेयर कहलाता है। इसकी वजह ये है कि इसमें कई परतें होती हैं और हवा अलग-अलग दिशाओं में चलती है, जिसके कारण गुब्बारा किसी भी दिशा में उड़कर चला जाता है। लेकिन अब ऐसी तकनीक विकसित की जा रही है कि इन्हें अंतरिक्ष में स्थिर रखा जा सके। इसके लिए गूगल भी सक्रिय है। गूगल की अल्फ़ाबेट कंपनी, अंतरिक्ष में गुब्बारों को भेजने के लिए 'प्रोजेक्ट लून' पर काम कर रही है। इसके तहत अल्फ़ाबेट ने अंतरिक्ष में गुब्बारे भेजकर संचार सुविधाएं देने का काम शुरू कर दिया है।

वर्ल्ड व्यू के मौजूदा स्ट्रैटोलाइट गुब्बारे क़रीब पचास किलो वज़नी मशीनें अपने साथ ले जा सकते हैं। इनमें सोलर सेल लगी होती हैं, जिससे ये अनंत काल तक काम कर सकते हैं। अब तो इनसे भी बड़े गुब्बारे बनाने की तैयारी है। बड़े गुब्बारों की मदद से अंतरिक्ष में सैलानियों को भी सैर के लिए भेजा जा सकेगा। इसी तकनीक से दूर-दराज़ के इलाक़ों तक किसी आपदा के दौरान मदद भी पहुँचाई जा सकती है।

गुब्बारों में ऐसी मशीनें लगाई जा रही हैं, जो हवा के रुख़ के हिसाब से इसकी ऊंचाई स्ट्रैटोस्फेयर में घटा या बढ़ा सकती हैं। अभी पिछले साल प्रोजेक्ट लून के तहत प्यूर्टो रिको में क़रीब तीन लाख लोगों को इंटरनेट सुविधा गुब्बारों के ज़रिए मुहैया कराई गई थी। समुद्री तूफ़ान मारिया की वजह से प्यूर्टो रिको में इंटरनेट सेवाएं देने वाले सिस्टम तबाह हो गए थे। इसी मिशन की कामयाबी से उत्साहित होकर अब अल्फ़ाबेट इस प्रोजेक्ट को दुनिया के दूसरे हिस्सों में लागू करने की तैयारी कर रही है। इसी तरह अमेरिका के टक्सन स्थित कंपनी वर्ल्ड व्यू गुब्बारों की मदद से न सिर्फ़ इंटरनेट की सुविधा देने, बल्कि निगरानी का काम भी करने की कोशिश कर रही है।

गुब्बारों को अंतरिक्ष में भेजकर हम अनगिनत फ़ायदे उठा सकते हैं। जैसे कि जंगल में लगी आग पर निगरानी रखी जा सकती है। तूफ़ानों का पता लगाया जा सकता है। समंदर में डकैती पर निगरानी रखी जा सकती है। फ़सलों की सेहत पर नज़र रखी जा सकती है। आज से तीन चार साल पहले वर्ल्ड व्यू कंपनी का ये लक्ष्य ख्वाब सरीखे लगते थे। लेकिन एक के बाद एक कई कामयाब टेस्ट फ्लाइट के बाद कंपनी को कई सरकारी ठेके मिल चुके हैं। कई निजी कंपनियों ने भी वर्ल्ड व्यू को काम दिया है। यहाँ तक कि सैन्य अधिकारी भी वर्ल्ड व्यू के गुब्बारों, स्ट्रैटोलाइट के बहुत सारे फ़ायदे गिनाते हैं। इससे दुनिया के तमाम हिस्सों पर निगरानी की जा सकेगी। इसी तकनीक से हम मौसम के बदलावों पर निगाह रख सकते हैं। इसके द्वारा किसी समुद्री तूफ़ान के मूवमेंट पर क़रीबी नज़र रखी जा सकती है।

ट्रेवलर बैलून से होगी सैर

वर्ल्ड व्यू के मौजूदा स्ट्रैटोलाइट गुब्बारे क़रीब पचास किलो वज़नी मशीनें अपने साथ ले जा सकते हैं। इनमें सोलर सेल लगी होती हैं, जिससे ये अनंत काल तक काम कर सकते हैं। अब तो इनसे भी बड़े गुब्बारे बनाने की तैयारी है। बड़े गुब्बारों की मदद से अंतरिक्ष में सैलानियों को भी सैर के लिए भेजा जा सकेगा। इसी तकनीक से दूर-दराज़ के इलाक़ों तक किसी आपदा के दौरान मदद भी पहुंचाई जा सकती है। अमरीकी कंपनियों को इस सेक्टर में चीन से कड़ी टक्कर मिल रही है। चीन भी

अंतरिक्ष में गुब्बारे भेजकर जासूसी करता है। चीन की कंपनी कुआंगशी साइंस की स्थापना 2010 मे शेनजान में हुई थी। ये गुब्बारों से बनी एयरशिप को अंतरिक्ष में भेजकर संचार सुविधाएं मुहैया कराती है। आजकल ये कंपनी ट्रैवेलर बैलून विकसित कर रही है। इसके ज़रिए अंतरिक्ष में टूरिस्ट भेजने की योजना है। पिछले साल अक्टूबर में कंपनी ने एक गुब्बारा अंतरिक्ष में भेजा था जिसमें एक कछुआ था। इसे अंतरिक्ष में भेजकर भविष्य में मानव भेजने की तैयारी की जा रही है। ऐसे गुब्बारे रिमोट सेंसिंग तकनीक और दूरसंचार सुविधाओं से सुसज्जित होंगें। किसी सैटेलाइट के मुक़ाबले ऐसे संचार गुब्बारे दस से सौ गुने तक सस्ते पड़ते हैं। ऐसी आशा है कि 2021 तक एक लाख डॉलर के टिकट पर लोगों को अंतरिक्ष की सैर करने को मिलेगा। इसके अलावा ट्रैवेलर बैलून की मदद से भविष्य में लॉन्च पैड विकसित करने में मदद मिलेगी। मतलब ये कि इन गुब्बारों से अंतरिक्ष में छोटे रॉकेट और छोटे-छोटे रिसर्च सैटेलाइट भी लॉन्च किए जा सकेंगे। इनकी मदद से भविष्य में ड्रोन भी लॉन्च किए जा सकेंगे। ऐसे प्रोजेक्ट में चीन की सेना भी दिलचस्पी ले रही है। चीन की सेना को लगता है कि ये सैन्य निगरानी का बेहद सस्ता ज़रिया हो सकता है। यानी अंतरिक्ष में कम ऊंचाई वाली रेस बहुत तेज़ हो चुकी है। फिलहाल तो अमेरिका इस में सब से आगे है। मगर, चीन भी ज़्यादा पीछे नहीं। भारत को भी इस दिशा में कदम बढ़ाने चाहिए, क्योंकि चीन की नजर भारत पर कुछ ज्यादा ही रहती है।

अंतरिक्ष में सेल्फी का दौर

सेल्फी अंतरिक्ष में भी ली जाएगी ऐसा पहले किसी ने सोचा भी नहीं था। लेकिन ऐसा हो चुका है। अंतरिक्ष में सेल्फी भी खींची गई है और उसकी निलामी भी हुई है। अंतरिक्ष में खींची पहली सेल्फी लगभग 6 लाख रुपये में नीलाम हुई है। 1966 में नासा के 'जेमिनी-12' मिशन के तहत स्पेस यात्रा पर गए अमेरिकी अंतरिक्ष यात्री बज एल्ड्रिन ने इसे कैमरे में कैद किया था। दरअसल स्पेस वाक वाले बैलून विशेष प्रकार से बनाए जाते हैं। ऐसे बैलून को गर्म हवा के द्वारा ऊपर आसमान में ले जाया जाता है। गर्म हवा का गुब्बारा एक बहुत हल्का हवाई यात्रा का साधन है, बहुत जगह पर्यटकों

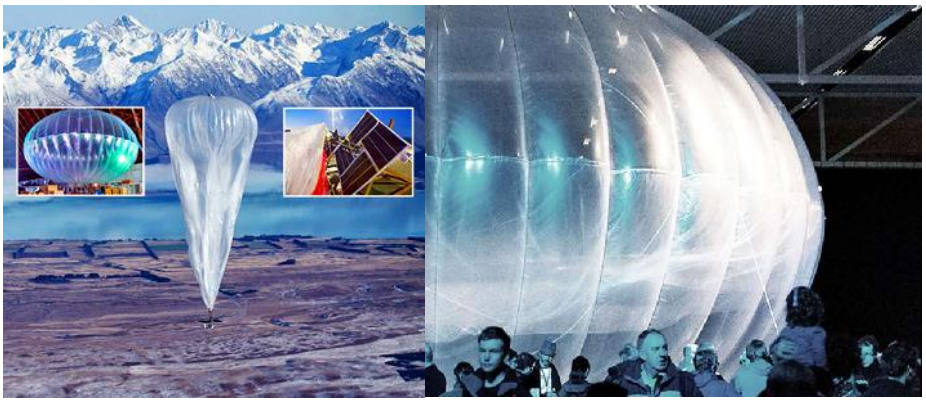

वर्ल्ड व्यू के मौजूदा स्ट्रैटोलाइट गुब्बारे क़रीब पचास किलो वज़नी मशीनें अपने साथ ले जा सकते हैं। इनमें सोलर सेल लगी होती हैं, जिससे ये अनंत काल तक काम कर सकते हैं। अब तो इनसे भी बड़े गुब्बारे बनाने की तैयारी है। बड़े गुब्बारों की मदद से अंतरिक्ष में सैलानियों को भी सैर के लिए भेजा जा सकेगा। इसी तकनीक से दूर-दराज़ के इलाक़ों तक किसी आपदा के दौरान मदद भी पहुंचाई जा सकती है।

को घुमाने के लिये हॉट एयर बैलून का इस्तेमाल किया जाता है। हॉट एयर बैलून में एक बड़ा सा गुब्बारा होता है जिसमें नीचे एक लकड़ी की बास्केट होती है। इसमें कुछ उपकरण लगे होते हैं। इन उपकरणों की सहायता से आग लगाकर इनके अंदर की हवा को गर्म किया जाता है, जब यह हवा गर्म हो जाती है तो यह गुब्बारा टोकरी में बैठे यात्रियों को सैर कराने निकल जाता है। लेकिन प्रश्न यहाँ ये है कि केवल गर्म हवा कैसे इस गुब्बारे को इतने वजन के साथ ऊपर ले जाती है। दरअसल गर्म हवा का घनत्व, ठंडी हवा के मुकाबले कम होता है। जब हवा को गर्म किया जाता है तब वह फैलती है और धनत्व कम होने के कारण हल्की हो जाती है, जिससे वह ऊपर उठने लगती है। आजकल के गुब्बारे नायलॉन से बने होते हैं जिसके कारण यह हवा उनमें निकलती नहीं है। यह गुब्बारा हवा में होता है तो प्रोपेन बर्नर द्वारा लगातार जरूरत के हिसाब से हवा को गर्म किया जाता है और इस प्रकार यह गर्म हवा का गुब्बारा ऊपर उठता है। इसकी ऊंचाई को भी इसी के द्वारा कंट्रोल किया जाता है। लेकिन इस गर्म हवा का असर सैर करने वालों पर कुछ नहीं होता। वे अंतरिक्ष का आनंद इन गुब्बारों के द्वारा खूब उठाते हैं।

अंतरिक्ष में मोर्चा संभालेंगे सैनिक

ऐसा लगता है कि जल्द ही सैनिक भी अब अंतरिक्ष में रहेंगे। वहीं से दुश्मन देशों पर नज़र रखेंगे। सैनिक अभ्यास भी वे अंतरिक्ष में ही करेंगे। लेकिन यह अन्य कमजोर देशों के लिए खतरे की घंटी है। दरअसल अमेरिकी राष्ट्रपति डोनल्ड ट्रंप एक स्पेस फ़ोर्स बनाना चाहते हैं। ट्रंप ने एक ऐसी सेना बनाने के लिए कहा है जो अब तक किसी भी देश ने इसके बारे में नहीं सोचा होगा। ट्रंप ने अपने रक्षा मुख्यालय पेंटागन को दुनिया की पहली और नई अमेरिकी स्पेस सेना तैयार करने का आदेश दिया है। इससे पहले अमेरिका में 5 प्रकार की सेना काम कर रही है लेकिन अब अमेरिकी सेना के पास ऐसी सेना होगी जो धरती पर नहीं अंतरिक्ष में अमेरिकी दबदबे को कायम करेगी। ऐसा पहली बार हुआ है की कोई देश अंतरिक्ष के लिए सेना का निर्माण कर रहा है। ट्रंप ने ऐसी सेना को तैयार करने के निर्देश जारी कर दिए हैं। ट्रंप का मानना है कि अंतरिक्ष में हमारी मौजूदगी के साथ अंतरिक्ष में हमारा दबदबा भी होना चाहिए। खबरों के अनुसार अमेरिका की नई स्पेशल फोर्स अंतरिक्ष में लड़ी जाने वाली जंग के लिए तैयार की जा रही है। ट्रंप इस सेना को बनाने के बारे में जरूर कहा है लेकिन इसे किस तरह से तैयार किया जाएगा इसके बारे में कोई जानकारी नहीं दी है। वैसे भी इस प्रकार की सेना का निर्माण करना बहुत बड़ी चुनौती का काम होगा। इस सेना को अगर बनाया जाता है तो अमेरिका के पास छठी ऐसी सेना होगी जो दुनिया को अंतरिक्ष में भी चुनौती देगी।

vijankumarpandey@gmail.com

इंटरनेट कनेक्टिविटी के लिए गेम चेंजर है जीसैट-11

शशांक द्विवेदी

राजस्थान मेवाड़ यूनिवर्सिटी के उपनिदेशक शशांक द्विवेदी 'टेक्नीकल टुडे' नामक पत्रिका का संपादन कर रहे हैं। वे विगत दो दशकों से विज्ञान संचारक और विज्ञान लेखन के रूप में भी कार्य कर रहे हैं। देश के प्रतिष्ठित विज्ञान पत्रिकाओं में आपके लेख नियमित रूप से प्रकाशित एवं चर्चित हुए हैं।

एक बड़ी कामयाबी हासिल करते हुए भारतीय अंतरिक्ष एजेंसी इसरो ने अब तक के सबसे वजनी सैटेलाइट का प्रक्षेपण कर दिया। दक्षिणी अमेरिका के फ्रेंच गुयाना के एरियानेस्पेस के एरियाने-5 रॉकेट से 5,854 किलोग्राम वजन वाले 'सबसे अधिक वजनी' उपग्रह जीसैट-11 को लॉन्च किया गया। जीसैट-11 देशभर में ब्रॉडबैंड सेवाएं उपलब्ध कराने में अहम भूमिका निभाएगा।

इस सैटेलाइट को इंटरनेट कनेक्टिविटी के लिए गेम चेंजर कहा जा रहा है। इसके काम शुरू करने के बाद देश में इंटरनेट स्पीड में क्रांति आ जाएगी। इसके जरिए हर सेकंड 100 गीगाबाइट से ऊपर की ब्रॉडबैंड कनेक्टिविटी मिलेगी। इसमें 40 ट्रांसपोर्डर कू-बैंड और का-बैंड फ्रीक्वेंसी में है जिनकी सहायता से हाई बैंडविथ कनेक्टिविटी 14 गीगाबाइट/सेकेंड डेटा ट्रांसफर स्पीड संभव है। इस सैटलाइट की खास बात है कि यह बीम्स को कई बार प्रयोग करने में सक्षम है, जिससे पूरे देश के भौगोलिक क्षेत्र को कवर किया जा सकेगा। इससे पहले के जो सैटलाइट लॉन्च किए गए थे उसमें ब्रॉड सिंगल बीम का प्रयोग किया गया था जो इतने शक्तिशाली नहीं होते थे कि बहुत बड़े क्षेत्र को कवर कर सकें। जीसैट-11 अगली पीढ़ी का 'हाई थ्रूपुट' संचार उपग्रह है और इसका जीवनकाल 15 साल से अधिक का है।

सैटलाइट के आपरेशनल होने के बाद इससे देश में हर सेकंड 100 गीगाबाइट से ऊपर की ब्रॉडबैंड कनेक्टिविटी मिल सकेगी । ग्रामीण भारत में इंटरनेट क्रांति के लिहाज से यह प्रक्षेपण काफी महत्वपूर्ण है। इसरो प्रमुख के. सिवन के अनुसार जीसैट-11 भारत की बेहतरीन अंतरिक्ष संपत्ति है। यह भारत द्वारा निर्मित अब तक का सबसे भारी, सबसे बड़ा और सबसे शक्तिशाली उपग्रह है। यह अत्याधुनिक और अगली पीढ़ी का संचार उपग्रह है जिसे इसरो के आई-6के बस के साथ कंफिगर किया गया है।

फिलहाल जीसैट-11 के एरियन-5 से अलग होने के बाद कर्नाटक के हासन में स्थित इसरो की मास्टर कंट्रोल फैसिलिटी ने उपग्रह का कमांड और नियंत्रण अपने कब्जे में ले लिया गया है और इसरो के मुताबिक जीसैट-11 बिलकुल ठीक है। उपग्रह को फिलहाल जियोसिंक्रोनस ट्रांसफर ऑर्बिट में स्थापित किया गया है। आगे वाले दिनों में धीरे-धीरे करके चरणबद्ध तरीके से उसे जियोस्टेशनरी (भूस्थिर) कक्षा में भेजा जाएगा। जियोस्टेशनरी कक्षा की ऊंचाई भूमध्य रेखा से करीब 36,000 किलोमीटर होती है। अभी जीसैट-11 को जियोस्टेशनरी कक्षा में 74 डिग्री पूर्वी देशांतर पर रखा जाएगा। उसके बाद उसके दो सौर एरेज और चार एंटिना रिफ्लेक्टर भी कक्षा में स्थापित किए जाएंगे। कक्षा में सभी परीक्षण पूरे होने के बाद उपग्रह काम करने लगेगा।

गुयाना से क्यों हुई जीसैट-11 की लॉन्चिंग ?

जीसैट-11 के प्रक्षेपण पर एक अहम सवाल और भी लोगों के दिमाग में है कि फ्रेंच गुयाना से ही क्यों हुई जीसैट-11 की लॉन्चिंग? अगर भारत अब अपने सारे उपग्रह भेजने में सक्षम है तो फिर ऐसा क्यों किया गया? असल में कई बार इसरो अपने सैटेलाइट्स को लांच करने के लिए यूरोपियन स्पेस एजेंसी के जरिए फ्रेंच गुयाना के कोऊरू से भेजता है। जीसैट-11 इसका सबसे हालिया उदाहरण है। यह इसरो का बनाया अब तक का सबसे भारी उपग्रह था। वहाँ से लांचिंग की

कई बड़ी वजहें हैं जिसमें सबसे प्रमुख यह है कि दक्षिण अमेरिका स्थित फ्रेंच गुयाना के पास लंबी समुद्री रेखा है, जो इसे रॉकेट लांचिंग के लिए और भी मुफीद जगह बनाती है। इसके अलावा फ्रेंच गुयाना एक भूमध्यरेखा के पास स्थित देश है, जिससे रॉकेट को आसानी से पृथ्वी की कक्षा में ले जाने में और मदद मिलती है। जियोस्टेशनरी कक्षा की ऊंचाई भूमध्य रेखा से करीब 36,000 किलोमीटर होती है। ज्यादातर रॉकेट पूर्व की ओर से छोड़े जाते हैं ताकि उन्हें पृथ्वी की कक्षा में स्थापित करने के लिए पृथ्वी की गति से भी थोड़ी मदद मिल सके। दरअसल पृथ्वी पश्चिम से पूर्व की ओर घूमती है। वैश्विक स्तर की सुविधाओं से युक्त होने, राकेट के लिए ईंधन आदि की पर्याप्तता आदि ऐसी वजहें हैं जिनके चलते भी इसरो अपने बेहद महत्वाकांक्षी प्रोजेक्ट्स के लांच के लिए फ्रेंच गुयाना को एक मुफीद लॉन्च साइट मानता रहा है।

हाल के वर्षों में इंटरनेट सेवा प्रदान करने के लिए जियोस्टेशनरी उपग्रह एक विकल्प के तौर पर उभरे हैं। जियोस्टेशनरी उपग्रह धरती की भूमध्यरेखा से 36.000 किलोमीटर ऊपर स्थित होते हैं यह बहुत बड़े क्षेत्र को कवर करते हैं। एक उपग्रह धरती के एक तिहाई हिस्से को कवर कर सकता है। इससे इंटरनेट सेवा प्रदाता (आईएसपी) को व्यापक भौगोलीय क्षेत्र में ग्राहक हासिल करने की छूट मिलती है। जियोस्टेशनरी उपग्रह हाई थ्रूपुट सेटेलाइट (एचटीएस) के जरिए स्पॉटबीम सेवा उच्च डेटा दर उपलब्ध करवातें हैं। आईएसपी और ग्राहक दोनों ही सेटेलाइट के जरिए एंटेना डिश लगा कर बिना तार के जुड़े होते हैं। वास्तव में ग्रामीण इलाकों में इंटरनेट कनेक्टिविटी बढ़ाने की जरूरत को बहुत गंभीरता से महसूस किया जा रहा है। इसके साथ ही सबसे तेजी से बढ़ती अर्थव्यवस्था और युवा कार्यबल के साथ भारत 'डिजिटल डिवाइड' को दूर करने का संघर्ष कर रहा है। अब तक देश के लगभग 50 करोड़ लोग इंटरनेट से जुड़ चुके हैं। लेकिन अभी भी देश की आधे से ज्यादा आबादी इंटरनेट से दूर है ऐसे में हमें ग्रामीण इलाकों में इंटरनेट कनेक्टिविटी पर विशेष ध्यान देना होगा ।

इंटरनेट कनेक्टिविटी के साथ साथ भारत में इंटरनेट की स्पीड पर भी ध्यान देना होगा। देश की काफी बड़ी युवा आबादी आजकल मोबाइल में इंटरनेट का प्रयोग कर

स्पीडटेस्ट वैश्विक सूचकांक में मोबाइल इंटरनेट की स्पीड के मामले में दुनिया में हमारा 109वां और फिक्स्ड ब्रॉडबैंड के मामले में 76वां स्थान बताता है कि अभी गुणवत्तापूर्ण इंटरनेट कनेक्टिविटी के लिए हमें लंबा रास्ता तय करना है। दुनिया की औसत मोबाइल इंटरनेट डाउनलोड स्पीड 20.28 एमबीपीएस है, जबकि हमारी 8.80 एमबीपीएस। हालांकि ब्रॉडबैंड डाउनलोड स्पीड के मामले में हमारी स्थिति थोड़ी सुधरी है। वैश्विक औसत 40.11 एमबीपीएस की तुलना में ब्रॉडबैंड में हमारी स्पीड अब 18.82 एमबीपीएस है। इस मोबाइल इंटरनेट सूचकांक में पड़ोसी देश म्यांमार 94वें, नेपाल 99वें और पाकिस्तान 89वें पायदान पर हैं। ऐसे में ब्रॉडबैंड स्पीड से कहीं अधिक भारत को इस बात पर ध्यान देना चाहिए कि अच्छी गुणवत्ता की मोबाइल इंटरनेट कनेक्टिविटी देश के तमाम उपभोक्ताओं को मिले।

रही है लेकिन इंटरनेट स्पीड की समस्या यहाँ पर भी है। स्पीडटेस्ट वैश्विक सूचकांक में मोबाइल इंटरनेट की स्पीड के मामले में दुनिया में हमारा 109वां और फिक्स्ड ब्रॉडबैंड के मामले में 76वां स्थान बताता है कि अभी गुणवत्तापूर्ण इंटरनेट कनेक्टिविटी के लिए हमें

लंबा रास्ता तय करना है। दुनिया की औसत मोबाइल इंटरनेट डाउनलोड स्पीड 20.28 एमबीपीएस है, जबकि हमारी 8.80 एमबीपीएस। हालांकि ब्रॉडबैंड डाउनलोड स्पीड के मामले में हमारी स्थिति थोड़ी सुधरी है। वैश्विक औसत 40.11 एमबीपीएस की तुलना में ब्रॉडबैंड में हमारी स्पीड अब 18.82 एमबीपीएस है। इस मोबाइल इंटरनेट सूचकांक में पड़ोसी देश म्यांमार 94वें, नेपाल 99वें और पाकिस्तान 89वें पायदान पर हैं। ऐसे में ब्रॉडबैंड स्पीड से कहीं अधिक भारत को इस बात पर ध्यान देना चाहिए कि अच्छी गुणवत्ता की मोबाइल इंटरनेट कनेक्टिविटी देश के तमाम उपभोक्ताओं को मिले, क्योंकि यह न सिर्फ एक लोकप्रिय माध्यम है, बल्कि विशेषकर गाँवों में लोगों के ऑनलाइन होने का सुलभ तरीका भी। फिलहाल जीसैट-11 की सफल लांचिंग से अब यह उम्मीद जगी है कि इंटरनेट की कनेक्टिविटी के साथ साथ अब इंटरनेट की स्पीड के मामलें में भी भारत तरक्की करेगा।

फ़िलहाल हम अंतरिक्ष विज्ञान, संचार तकनीक, परमाणु उर्जा और चिकित्सा के मामलों में न सिर्फ विकसित देशों को टक्कर दे रहें है बल्कि कई मामलों में उनसे भी आगे निकल गए है। अंतरिक्ष में भारत के लिए संभावनाएं बढ़ रही है, इसने अमेरिका सहित कई बड़े देशों का एकाधिकार तोडा है। कुल मिलाकर जीसैट-11 भारत की मुख्य भूमि और द्वीपीय क्षेत्र में हाई-स्पीड डेटा सेवा मुहैया कराने में बड़ा मददगार साबित होगा। साथ ही चार संचार उपग्रहों के माध्यम से देश में 100 जीबीपीएस डेटा स्पीड मुहैया कराने का लक्ष्य रखा गया है। इस श्रेणी में जीसैट-11 तीसरा संचार उपग्रह है। संचार उपग्रह के मामले में भारी होने का मतलब है कि वो बहुत ताकतवर है और लंबे समय तक काम करने की क्षमता रखता है। साथ ही यह अब तक बने सभी सैटेलाइट में ये सबसे ज्यादा बैंडविथ साथ ले जाना वाला उपग्रह भी होगा। और इससे पूरे भारत में इंटरनेट की सुविधा मिल सकेगी खासकर ग्रामीण भारत में इसके जरिये इंटरनेट क्रांति संभव होगी जो देश के विकास के लिए बहुत महत्वपूर्ण है ।

dwivedi.shashank15@gmail.com

केप्लर ने दिखाई ब्रह्मांड की अनदेखी दुनिया

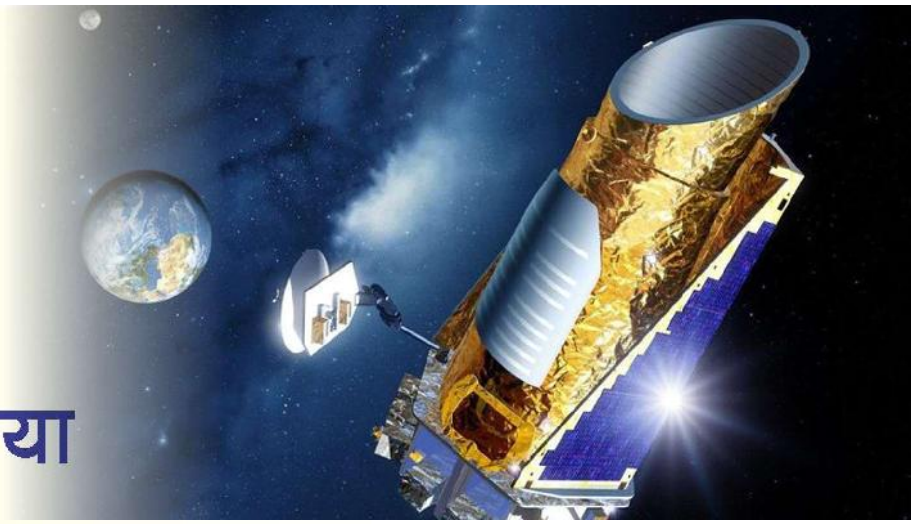

प्रदीप

आज से तकरीबन 25-30 वर्ष पहले तक हमारे सौरमंडल से इतर ग्रहों की बात करना विज्ञान कथा साहित्य और फिल्मों के विषय हुआ करते थे। लेकिन जैसे-जैसे खगोलिकी का विकास होता गया, वैसे-वैसे ही हमारी आकाशगंगा में ही ऐसे कई तारों का पता चला जिनके इर्द-गिर्द हमारे सौरमंडल की तरह के ग्रह हो सकते हैं। सौरमंडल के पार अंततारकीय अंतरिक्ष के बारे में अधिकतर जानकारी हमें वर्तमान सदी में ही मिली है। आज अंतरिक्ष में परिक्रमारत कई दूरबीनें ब्रह्मांड के रहस्यों की परतें खोलने में जुटी हुई हैं। जिस अंतरिक्ष दूरबीन ने इंसानी बसावट लायक पृथ्वी जैसे ग्रहों की खोज में सबसे अधिक योगदान दिया, वह निश्चित रूप से 'केप्लर टेलिस्कोप' था। हाल ही में अमेरिकी अंतरिक्ष एजेंसी नासा ने केप्लर स्पेस टेलिस्कोप मिशन की समाप्ति की धोषणा की है। नासा के अधिकारियों के मुताबिक केप्लर टेलिस्कोप का ईंधन खत्म हो गया है, इसलिए उसे रिटायर किया जा रहा है। यह सौरमंडल से बाहर पृथ्वी जैसे ग्रहों को खोजने का अबतक का सबसे सफ़ल अभियान रहा है। 60 करोड़ डॉलर की लागत से तैयार केप्लर को 7 मार्च 2009 को अंतरिक्ष में लांच किया गया था। ग्रहीय गति के नियमों के आविष्कारक जर्मन खगोलशास्त्री योहानेस केप्लर के सम्मान में इस अभियान का नाम 'केप्लर स्पेस टेलिस्कोप मिशन' रखा गया था।

वर्ष 1992 में पहली बार सौरमंडल से बाहर एक पल्सर तारे के इर्द-गिर्द ग्रह जैसा कुछ होने का अनुमान लगाया गया था और इस दिशा में रोमांचक मोड़ तब आया जब वर्ष 1995 में वैज्ञानिकों ने सौरमंडल के बाहर पहला ग्रह (एक्सोप्लानेट) खोज निकाला। इस खोज ने पृथ्वी जैसे रूप-आकार वाले ग्रह को खोजने की लालसा को जगा दिया। और इसके पश्चात पृथ्वी सदृश्य ग्रहों को खोजने का बड़ा अभियान चला, जिसमें केप्लर टेलिस्कोप ने अपनी क्रांतिकारी भूमिका निभाई। केप्लर टेलिस्कोप को हमारी आकाशगंगा (मिल्की-वे) के एक विशेष हिस्से का अवलोकन करने तथा उसके प्रधान तारों के जीवन योग्य क्षेत्र (गोल्डीलॉक्स ज़ोन) में पृथ्वी जैसे ग्रहों की खोज के लिये बनाया गया था। केप्लर टेलिस्कोप 2009 से 2018 तक 9 साल और 6 महीने अंतरिक्ष में सक्रिय रहा। इसने

वर्ष 1992 में पहली बार सौरमंडल से बाहर एक पल्सर तारे के इर्द-गिर्द ग्रह जैसा कुछ होने का अनुमान लगाया गया था और इस दिशा में रोमांचक मोड़ तब आया जब वर्ष 1995 में वैज्ञानिकों ने सौरमंडल के बाहर पहला ग्रह (एक्सोप्लानेट) खोज निकाला। इस खोज ने पृथ्वी जैसे रूप-आकार वाले ग्रह को खोजने की लालसा को जगा दिया। और इसके पश्चात पृथ्वी सदृश्य ग्रहों को खोजने का बड़ा अभियान चला, जिसमें केप्लर टेलिस्कोप ने अपनी क्रांतिकारी भूमिका निभाई।

प्रदीप एक साइंस ब्लॉगर एवं विज्ञान संचारक हैं। ब्रह्मांड विज्ञान, विज्ञान के इतिहास और विज्ञान की सामाजिक भूमिका पर लोकोपयोगी लेख लिखने में विशेष रूचि है। ज्ञान-विज्ञान से संबंधित आपके लेख विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहते हैं।

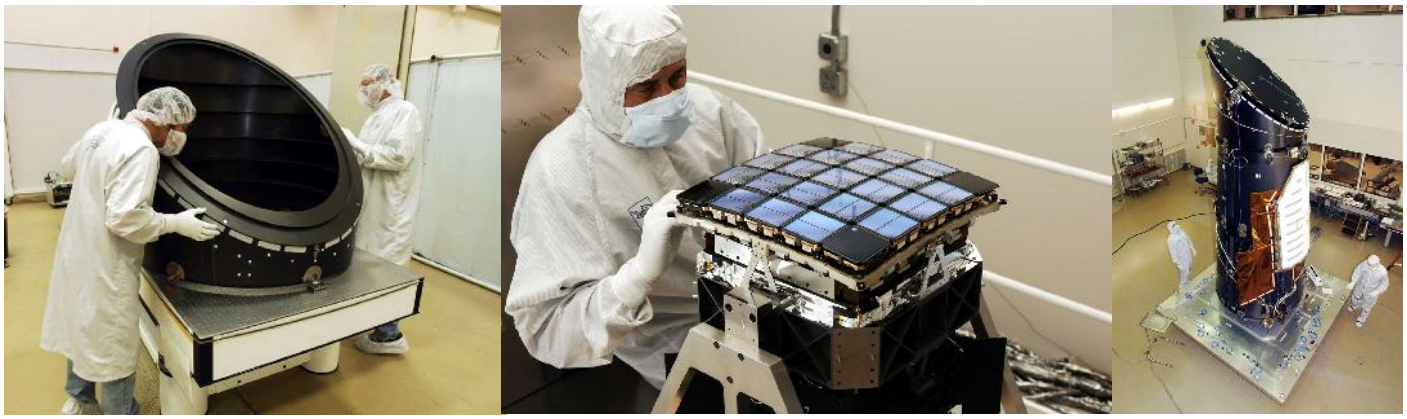

5,30,506 तारों का अवलोकन किया। इसमें से 2,681 ग्रहों की पुष्टि की गई है। ये सभी ग्रह पृथ्वी से कुछ प्रकाश वर्ष से लेकर हजारों प्रकाश वर्ष दूर तक स्थित हैं।

केप्लर ने बीते साल हमारे सौरमंडल के तुल्य एक नए सौरमंडल का पता लगाया था, जिसके प्रधान तारे केप्लर 90 के इर्दगिर्द आठ ग्रह परिक्रमा कर रहे हैं। केप्लर 90 के पास हमारे सूर्य के जैसे आठ ग्रह है। दिलचस्प बात यह है कि हमारे सौरमंडल के बाहर खोजा गया यह अब तक का सबसे बड़ा सौरमंडल है। दरअसल, केप्लर का मुख्य उद्देश्य सूर्य से भिन्न किंतु उसी तरह के अन्य तारों के इर्द-गिर्द ऐसे ग़ैर-सौरीय ग्रहों को ढूंढना था जो पृथ्वी से मिलते-जुलते हों और उन पर जीवन की संभावना हो। इसने करीब 5,30,000 तारों की जाँच-पड़ताल की है। खगोल वैज्ञानिको ने केप्लर दूरबीन के डाटा का विश्लेषण करते हुए अब तक लगभग 2,681 ग्रहों की खोज की है। हाल ही में नासा ने पृथ्वी जैसे ग्रह की खोज में डाटा विश्लेषण के लिए गूगल की आर्टिफिशल इंटेलिजेंस तकनीक की भी सहायता ली थी। वैज्ञानिकों के अनुसार केप्लर टेलिस्कोप ने इंसान के लिए ब्रह्मांड की खोजबीन का रास्ता खोला तथा इस सवाल का उत्तर खोजने का प्रयास किया कि क्या इस ब्रह्मांड में हम अकेले हैं? नासा की ओर से जारी बयान के अनुसार, केप्लर ने दिखाया कि रात में आकाश में दिखने वाले 20 से 50 प्रतिशत तारों के सौरमंडल में पृथ्वी के आकार के ग्रह हैं और वे अपने तारों के रहने योग्य क्षेत्र के भीतर स्थित हैं। इसका मतलब है कि वे अपने तारों से इतनी दूरी पर स्थित हैं, जहां इन ग्रहों पर जीवन के लिए सबसे महत्वपूर्ण पानी के होने की संभावना है।

केप्लर ने बीते साल हमारे सौरमंडल के तुल्य एक नए सौरमंडल का पता लगाया था, जिसके प्रधान तारे केप्लर 90 के इर्दगिर्द आठ ग्रह परिक्रमा कर रहे हैं। केप्लर 90 के पास हमारे सूर्य के जैसे आठ ग्रह है। दिलचस्प बात यह है कि हमारे सौरमंडल के बाहर खोजा गया यह अबतक का सबसे बड़ा सौरमंडल है। दरअसल, केप्लर का मुख्य उद्देश्य सूर्य से भिन्न किंतु उसी तरह के अन्य तारों के इर्द-गिर्द ऐसे ग़ैर-सौरीय ग्रहों को ढूंढना था जो पृथ्वी से मिलते-जुलते हों और उन पर जीवन की संभावना हो।

नासा में खगोलभौतिकी के निदेशक पॉल हर्ट्ज का अनुमान है कि केप्लर के खोजे ग्रहों में दो से लेकर दर्जन भर तक ऐसे ग्रह हैं जो चट्टानी हैं और पृथ्वी के बराबर आकार के हैं। इनमें से नौ अपने प्रधान तारे के जीवन योग्य क्षेत्र मे हैं - केप्लर-560बी, केप्लर-705बी, केप्लर-1229बी, केप्लर-1410बी, केप्लर-1455बी, केप्लर-1544बी, केप्लर-1593बी, केप्लर-1606बी, केप्लर-1638बी।

केप्लर अपने पूर्वनिर्धारित लक्ष्यों को पूरा करने में बेहद कामयाब रहा। केप्लर का ईंधन खत्म होने के संकेत करीब दो सप्ताह पहले ही मिले थे। उसका ईंधन पूरी तरह से खत्म होने से पहले ही वैज्ञानिक उसके पास मौजूद सारा डेटा एकत्र करने में सफल रहे। नासा का कहना है कि फिलहाल केप्लर धरती से दूर सुरक्षित कक्षा में है। बहरहाल, केप्लर ने हमें यह बता दिया कि ब्रह्मांड में पृथ्वी जैसे ग्रह और उसपर जीवन की तलाश बेहद जटिल कार्य है, क्योंकि पृथ्वी जैसे ग्रह होने की शर्ते यही हैं कि ऐसे ग्रह ज़्यादातर मामलों में हमारी पृथ्वी जैसा ही होनी चाहिए। मगर अब तक की खोजों से ऐसे किसी भी ग्रह का नहीं पता चला है, जो प्रत्येक मामले में हमारी पृथ्वी जैसा हो। ज्यादा से ज्यादा एक हजार साल में यह धरती जीवन के योग्य नहीं बच पाएगी, इसलिए इंसान भविष्य में अपने को सुरक्षित रखने के लिए नई पृथ्वी की तलाश में है। आशा है कि निकट भविष्य में केप्लर जैसे अन्य अंतरिक्ष अभियानों के ज़रिये पृथ्वी जैसे जीवन अनुकूल स्थितियाँ युक्त ग्रहों की खोज हो सकेगी। अलविदा केप्लर!

pk110043@gmail.com

13 सितम्बर 1931 में जन्में शिवगोपाल मिश्र एम.एस-सी, डी.फिल, साहित्य रत्न में शिक्षित डॉ. मिश्र विज्ञान परिषद् प्रयाग इलाहाबाद के प्रधानमंत्री हैं। वे शीलाधर मृदा विज्ञान शोध संस्थान के निदेशक भी रहे। उन्होंने कई विज्ञान कोश व ग्रंथों की रचना की जिसमें हिन्दी में 26 तथा अंग्रेजी में 11 पुस्तकों सहित 5 पाठयपुस्तकें, नौ साहित्यिक पुस्तकें, महाकवि निराला पर तीन पुस्तकें उल्लेखनीय हैं। आपको आत्माराम पुरस्कार, भारत भूषण सम्मान आदि से विभूषित किया गया है। विज्ञान को समझने-समझाने के लिए हिन्दी विज्ञान लेखन के क्रमिक विकास का विहंगावलोकन आवश्यक है। वस्तुतः ऐसी ही सोच के कारण हिन्दी विज्ञान लेखन के भूत, वर्तमान तथा भविष्य विषयक यह पुस्तक गम्भीरता से विचार करके रोचक तरीके से लिखी गई है।

अकिर्तित भारतीय वैज्ञानिक सितारे

येल्लाप्रागदा सुब्बाराव

डॉ. कपूरमल जैन

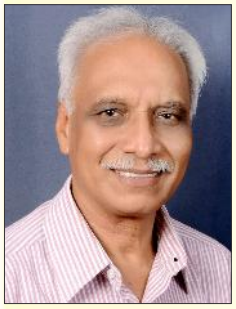

डॉ. कपूरमल जैन वरिष्ठ विज्ञान लेखक हैं। भौतिकी शास्त्र से संबंधित लेख लिखने में वे सिद्धहस्त हैं। घर-घर में विज्ञान जैसी लोकप्रिय शृंखला भी उन्होंने लिखी है। आण्विक भौतिकी के क्षेत्र में उन्होंने शोधकार्य किया है। अब तक 225 से अधिक लेख तथा 15 पुस्तकें प्रकाशित हो चुकीं हैं। डॉ. कपूरमल जैन की लोक व्यापीकरण एवं विज्ञान की शिक्षण पद्धति में नवाचार लाने में गहरी रुचि है। वे भोपाल में निवास करते हैं तथा इस दिशा में कई वर्षों से कार्य कर रहे हैं।

विज्ञान के इतिहास में हमें कई ऐसे महान वैज्ञानिकों का परिचय मिलता है, जिन्होंने अपनी खोजों से मानव-जाति को नई ऊँचाइयाँ प्रदान की तथा धरती पर मानव-जीवन को सुगम बनाने में अपनी खोजों माध्यम से अहम् भूमिका निभाई। इनमें से कई वैज्ञानिक 'नोबेल पुरस्कारों' से नवाजे गये। लेकिन, कुछ ऐसे भी वैज्ञानिक रहे, जो विभिन्न कारणों से नजरअंदाज हो गये तथा नोबेल पुरस्कार पाने के सम्मान से वंचित रह गये। इनमें से एक वैज्ञानिक येल्लाप्रागदा सुब्बाराव भी हैं।

नोबेल पुरस्कार देने की परम्परा 1901 से आरंभ हुई। इस पुरस्कार को अल्फ्रेड नोबेल की याद में रॉयल स्वीडिश एकेडमी ऑफ साइंसेस, दी स्वीडिश एकेडमी, दी कारोलिंस्का इंस्टीट्यूट तथा दी नार्वेजियन नोबेल कमेटी द्वारा मानव-हित में किये गये उल्लेखनीय कार्यों के लिए सिर्फ जीवित वैज्ञानिकों ही प्रदान किया जाता है। आइये, पहले हम कुछ ऐसे विशिष्ट वैज्ञानिकों पर नजर डालते हैं, जिन्होंने अपने अनुसंधानों से विश्व-इतिहास में अपनी अमिट छाप छोड़ी।

अपनी किसी एक विशिष्ट खोज के लिए नोबेल पुरस्कार से सम्मानित वैज्ञानिक

अगर हम पिछले 118 वर्षों के इतिहास पर नजर डालें तो हमें कई ऐसे वैज्ञानिक मिलते हैं, जिन्हें हम उनकी किसी एक विशिष्ट खोज के कारण जानते हैं। उदाहरण के लिए हम विल्हेल्म रोंट्जन को उनकी 'एक्सरे' के लिए, मेडम क्यूरी को 'रेडियम (रेडियोएक्टिविटि)' की खोज के लिए, सी.वी. रमन को 'रमन प्रभाव' की खोज के लिए, विक्टर हैज को 'कॉस्मिक किरणों' की खोज के लिए, रोनॉल्ड रॉस को 'मलेरिया के परजीवी के जीवन चक्र' की खोज के लिए, अलेक्जेंडर फ्लेमिंग को 'पेनिसिलिन' की खोज के लिए, लुइस डिब्रोगली को 'पदार्थ-तरंग' की परिकल्पना के लिए जानते हैं। और, इन सभी वैज्ञानिकों को उनकी विशिष्ट खोजों ने नोबेल पुरस्कार भी दिलाया।

अपनी दो-दो महत्त्वपूर्ण खोजों के लिए नोबेल पुरस्कार से सम्मानित वैज्ञानिक

इतिहास के पन्नों में दर्ज कुछ ऐसे भी वैज्ञानिक रहे हैं, जिन्हें हम उनकी दो-दो महत्त्वपूर्ण खोजों के लिए जानते हैं। इनमें अलबर्ट आईंस्टीन को हम उनके 'क्वांटम सिद्धांत के आधार पर प्रकाश विद्युत प्रभाव के स्पष्टीकरण' तथा 'सापेक्षता के सिद्धांत' की खोज के लिए, जॉन बार्डिन को 'ट्रांजिस्टर' के आविष्कार तथा अतिचालकता (सुपरकंडक्टिविटी) के स्पष्टीकरण के लिए, के लिए जानते हैं।

इतिहास में गोता लगाने पर हमें कुछ ऐसे भी वैज्ञानिक मिलते हैं, जिन्होंने एक ही फील्ड में रहते हुए अनेक यादगार खोजें कीं। ऐसे वैज्ञानिकों में वैज्ञानिक राबर्ट वुडवर्ड हैं, जिन्होंने आर्गेनिक केमिस्ट्री के क्षेत्र में बहुत काम करते हुए कई जटिल प्राकृतिक उत्पादों (नेचरल प्रॉडक्ट्स) की संरचनाओं की आणविक संरचनाओं को ज्ञात कर उनका संश्लेषण किया। इसी कड़ी में कुछ और उल्लेखनीय नाम हैं। इनमें अर्नेस्ट रदरफोर्ड, नील्स बोहर तथा हरगोविंद खुराना हैं। रदरफोर्ड ने रेडियोधर्मी विघटन नियम, परमाणु में नाभिक तथा नाभिक में प्रोटॉन की उपस्थिति की प्रामाणिक खोजें कीं। नील्स बोहर ने परमाणु मॉडल, पूरकता सिद्धांत तथा नाभिक के द्रव-बूँद मॉडल को प्रतिपादित किया। हरगोविंद खुराना ने 'जेनेटिक कोड की खोज' की तथा 'कृत्रिम जीन का संश्लेषण'

किया। ये सभी वैज्ञानिक भी नोबेल पुरस्कार से सम्मानित हुए।

बहुमूल्य खोजें करने वाले, लेकिन नोबेल पुरस्कार से वंचित वैज्ञानिक

इतिहास में हमें कुछ ऐसे भी जाने-माने वैज्ञानिक मिलते हैं, जिन्होंने अपने समय में मानव-हित में कई अमूल्य खोजें तो कीं, लेकिन वे नोबेल पुरस्कार या इसके समतुल्य किसी पुरस्कार से वंचित रहे। इनमें 'माइक्रोवेव्स पर आधारित दूरसंचार प्रणाली' के आविष्कार के साथ ही 'वनस्पतियों को जैव-जगत का सम्मानीय सदस्य' बनाने वाले जगदीश चंद्र बसु, 'पोलियो' के टीके के आविष्कारक जोनस साल्क, 'आधुनिक प्रतिरक्षा विज्ञान के जनक' माइकल हैडलबर्गर, 'आधुनिक खगोल भौतिकी' के पिता मेघनाद साहा, 'कण भौतिकी' के अध्ययन के लिए 'सांख्यिकी' का आविष्कार करने वाले सत्येननाथ बोस, हमारे शरीर में बहुतायात से पाये जाने वाले प्रोटीन 'श्लेषजन' की संरचना की खोज के साथ ही 'सीटी स्कैन' तथा एन.एम.आर. टेक्नॉलॉजी की नींव रखने वाले जी.एन. रामचंद्रन आदि जैसे वैज्ञानिक शामिल हैं।

येल्लाप्रागदा सुब्बाराव : सबसे अलग और विलक्षण

इतिहास में जिन महान वैज्ञानिकों के नाम दर्ज हैं, उनमें सबसे अलग और विलक्षण एक नाम येल्लाप्रागदा सुब्बाराव का है। हालांकि अधिकतर लोग उनके बारे में ज्यादा नहीं जानते हैं क्योंकि उन्होंने बिना लाइम लाइट में आये हुए खामोशी से काम किया।

सुब्बाराव ने विज्ञान की किसी एक विधा में नहीं बल्कि विज्ञान की बायोकेमिस्ट्री, औषध विज्ञान, सूक्ष्मजीव विज्ञान, कर्करोग विज्ञान तथा पोषाहार विज्ञान जैसी विविध विधाओं में अपने मौलिक और क्रांतिकारी अनुसंधानों से सबको चमत्कृत कर दिया। अगर हम ज्ञात 'जीव और चिकित्सा विज्ञान' के इतिहास पर नजर डालें तो हमें उनकी तरह मौलिक खोजें करने वाला ऐसा अन्य कोई और वैज्ञानिक दिखाई नहीं देता है, जिनके शोध का मानव-हित में इतना व्यापक और व्यावहारिक उपयोग हुआ हो। आज कई वैज्ञानिक तो यह भी मानते हैं कि उनके जैसा वैज्ञानिक हजारों सालों में एक बार पैदा होता है। हालांकि उनके जीवित रहते नोबेल पुरस्कार समिति की नज़र उन पर नहीं पड़ी और उन्हें

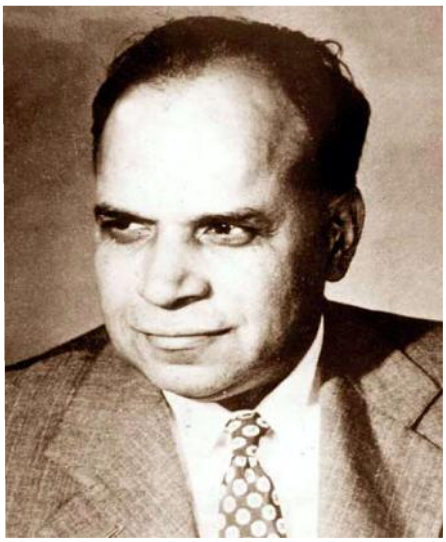

येल्लाप्रागदा सुब्बाराव इस सदी के बहुत ही विलक्षण मस्तिष्क और मानवसेवा के लिए पूर्णत: समर्पित वैज्ञानिक रहे हैं। कई असाध्य बिमारियों के लिए उन्होंने जिन जादुई औषधियों को खोजा, उसने उन्हें `अद्भुत दवाओं' का `जादूगर' बना दिया। इतना ही नहीं, उन्होंने `मिथोट्रेक्सेट' नामक एक ऐसी दवा की भी खोज की, जो `कैंसर' के उपचार के लिए `कीमोथेरापी' के लिए पहली दवा के रूप में बहुत ही कारगर साबित हुई। इसने उन्हें `कीमोथेरापी का पिता' बना दिया।

नोबेल पुरस्कार नहीं मिल सका। आइये, हम सुब्बाराव के जीवन और शोध-कार्यों पर नजर डालते हैं।

`अद्भुत दवाओं' के `जादूगर' तथा `कीमोथेरापी के पिता'

येल्लाप्रागदा सुब्बाराव इस सदी के बहुत ही विलक्षण मस्तिष्क और मानवसेवा के लिए पूर्णत: समर्पित वैज्ञानिक रहे हैं। कई असाध्य बीमारियों के लिए उन्होंने जिन जादुई औषधियों को खोजा, उसने उन्हें 'अद्भुत दवाओं' का 'जादूगर' बना दिया। इतना ही नहीं, उन्होंने 'मिथोट्रेक्सेट' नामक एक ऐसी दवा की भी खोज की, जो 'कैंसर' के उपचार के लिए 'कीमोथेरापी' के लिए पहली दवा के रूप में बहुत ही कारगर साबित हुई। इसने उन्हें 'कीमोथेरापी का पिता' बना दिया। सच में उन्होंने 'चिकित्सा विज्ञान' को सर्वथा नया रूप प्रदान कर 'हताश और निराश बीमार लोगों' के जीवन में आशा का संचार कर दिया।

विकट परिस्थितियों के बीता बचपन

सुब्बाराव का जन्म 12 जनवरी 1895 को आंध्रप्रदेश के भीमावरम शहर में हुआ। उनकी स्कूली शिक्षा काफी कष्टमय और विभिन्न कारणों से बाधित रही। कम उम्र में ही उनके पिता की मृत्यु हो गयी थी। अत: माँ पर उनकी पढ़ाई-लिखाई की जिम्मेदारी आ गयी। लेकिन, उनकी आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं थी। उनकी माँ को उनकी पढ़ाई के लिए अपने गहनों तक को बेचना पड़ा। इसतरह वे अपनी माँ को संघर्ष करते देखते रहते। इसका उनके बाल-मन पर नकारात्मक प्रभाव पड़ रहा था। इसमें और अधिक वृद्धि तब हुई, जब उन्होंने इस दौरान अपने परिवार के कई सगे-संबंधियों की बीमारियों के कारण अकाल मृत्यु का शिकार होते हुए देखा, उन्हें स्वयं भी लम्बे समय तक दस्त की शिकायत रही। इसतरह मिलने वाले मानसिक आघातों से वे मन ही मन बहुत दुखी रहने लगे। इसका गंभीर असर उनकी पढ़ाई पर पड़ा और अत्यंत प्रतिभा-सम्पन्न होने के बावजूद वे 'हिंदू हाई स्कूल' मद्रास से 'मेट्रिक' की परीक्षा तीसरे प्रयास में उत्तीर्ण कर सके। लेकिन, इसके बाद उन्होंने 'प्रेसिडेंसी कॉलेज मद्रास' से प्रथम प्रयास में ही 'इंटर' की परीक्षा उत्तीर्ण की।

अपने जीवन को मानव-सेवा के लिए समर्पित करने का निर्णय

सुब्बाराव स्कूल में 'गणित' विषय में अच्छे थे। लेकिन, मानसिक आघातों को झेल रहा उनका दुखी और आहत बाल-मन बार-बार 'संन्यास' लेना चाहता था और इसके लिए वे रामकृष्ण मठ गये और वहाँ रहे भी। माँ ने उन्हें रोकने के बहुत प्रयास किये, लेकिन वह उन्हें मनाने में सफल नहीं हो पा रही थी। अंत में उन्होंने 'रामकृष्ण मिशन' के संतों से इस बाबत् चर्चा की तथा उन्हें समझाने और मनाने का आग्रह किया। सुब्बाराव की सेवा-भावना तथा मानवता के प्रति प्रेम को ध्यान में रखते हुए संतों ने समझाया तथा उन्हें अपने जीवन को मानव-सेवा के लिए समर्पित करने के लिए कहा, लेकिन संन्यास ले कर नहीं। सुब्बाराव मान गये तथा संसार में रहते हुए मानव-सेवा में अपने जीवन को समर्पित करने के लिए तैयार

हो गये। इसके लिए उन्होंने 'चिकित्सा' के माध्यम से लोगों की सेवा करने का संकल्प लिया। हालांकि, इसके लिए एक विशिष्ट कौशल की आवश्यकता होती है। अतः चिकित्सीय कौशल को विकसित करने के लिए उन्होंने स्कूल के दिनों ने सबसे प्रिय लगने वाले 'गणित' विषय को छोड़ा तथा 'चिकित्सा' के क्षेत्र में आगे बढ़ने का निश्चय किया। लेकिन, इस विषय की पढ़ाई में बहुत अधिक खर्च आता था, जिसकी व्यवस्था करना उनकी माँ के लिए कठिन था, क्योंकि घर की आर्थिक स्थिति अभी भी अच्छी नहीं थी। इस बीच कुछ शुभचिंतकों ने उनकी मदद की, जिससे 'मद्रास मेडिकल कॉलेज' में उनकी पढ़ाई आरंभ हो सकी।

गांधीजी के आह्वान पर `खादी' अपनाई

डाक्टरों और विद्यार्थियों को शल्य-चिकित्सा के दौरान एक विशेष पोषाक पहनना पड़ती थी, जो विदेशी कपड़ों से बनी होती थी। उन दिनों देश में स्वतंत्रता के लिए आंदोलन चल रहा था। गांधीजी विदेशी कपड़ों के बहिष्कार का आह्वान कर 'खादी' अपनाने पर जोर दे रहे थे। सुब्बाराव ने भी निर्णय लिया कि वे ब्रिटिश सामानों का बहिष्कार कर ब्रिटिश राज्य के खिलाफ अपनी आवाज बुलंद करेंगे। और, इसतरह गांधीजी के आह्वान पर सुब्बाराव ने 'खादी' की पोषाक पहनना शुरू कर दिया। अपने देश से उन्हें बहुत प्यार था। यही कारण था कि आगे चल कर अपने कॅरियर के अधिकतर समय अमरीका में रहने के बावजूद उन्होंने ग्रीन कार्ड नहीं लिया और भारत के ही नागरिक बने रहे।

खादी का पड़ा कैरियर पर असर

'खादी' की पोशाक पहनने से सुब्बाराव के अपने अंग्रेज प्रोफेसर एम.सी. बोनफिल्ड नाराज हो गये। और सुब्बाराव को उनके गुस्से का शिकार होना पड़ा। फलस्वरूप, अच्छे अंकों के बावजूद उन्हें 'एम.बी.बी.एस.' की डिग्री से वंचित होना पड़ा। यहाँ से उन्हें सिर्फ 'एल.एम.एस.' का प्रमाणपत्र मिला। यह उनके आगे बढ़ने के मार्ग में बाधा साबित हुआ, 'एम.बी.बी.एस.' की डिग्री नहीं होने के कारण उन्हें 'मद्रास मेडिकल सर्विसेस' में प्रवेश नहीं करने दिया गया। लेकिन, उन्होंने इसकी परवाह नहीं की और अपने प्रयासों को जारी रखा। अंततः 'डॉ. लक्ष्मीपति आयुर्वेदिक कॉलेज', मद्रास में

येल्लाप्रागदा सुब्बाराव इस सदी के बहुत ही विलक्षण मस्तिष्क और मानवसेवा के लिए पूर्णतः समर्पित वैज्ञानिक रहे हैं। कई असाध्य बीमारियों के लिए उन्होंने जिन जादुई औषधियों को खोजा, उसने उन्हें `अद्भुत दवाओं' का `जादूगर' बना दिया। इतना ही नहीं, उन्होंने `मिथोट्रेक्सेट' नामक एक ऐसी दवा की भी खोज की, जो `कैंसर' के उपचार के लिए `कीमोथेरापी' के लिए पहली दवा के रूप में बहुत ही कारगर साबित हुई। इसने उन्हें `कीमोथेरापी का पिता' बना दिया।

उन्हें 'शरीर-रचना विज्ञान विभाग' में व्याख्याता की नौकरी मिल गयी।

`आयुर्वेदिक दवाओं' की `चमत्कारिक निदान क्षमता' से प्रभावित

'डॉ. लक्ष्मीपति आयुवेर्दिक कॉलेज', मद्रास में काम करते हुए सुब्बाराव 'आयुर्वेदिक दवाओं' की 'चमत्कारिक निदान क्षमता' से बहुत प्रभावित हुए। इसके बाद उन्होंने 'आयुर्वेद' में नयी दवाइयों की खोज पर उच्च-स्तरीय अनुसंधान करने का निश्चय किया, ताकि 'आयुर्वेद' को 'आधुनिक चिकित्सा जगत' में पहचान दिलाई जा सके। लेकिन, भारत में उच्च-स्तरीय अनुसंधान हेतु सुविधाओं का अभाव था। अतः उन्हें दिक्कत आ रही थी। लेकिन, तभी उनकी मुलाकात एक अमरीकी चिकित्सक से हुई, जो 'रॉकफेलर स्कॉलरशिप' पर भारत का दौरा कर रहे थे। उन्हें समझ में आया कि पाश्चात्य जगत 'आयुर्वेद' के महत्त्व से अपरिचित है। अतः उन्होंने पश्चिमी दुनिया को 'आयुर्वेद' का महत्त्व को समझाने के लिए अमरीका जाने का निर्णय लिया। लेकिन, आर्थिक समस्या इसमें आड़े आ रही थी। तभी, पूर्व की तरह ही इस बार भी कुछ आत्मीय-जन तथा उनके श्वसुर मदद के लिए आगे आये और वे अमरीका जाने में सफल हो गये।

प्रथम आविष्कार रेपीड केलोरीमिट्रिक मेथोड

'एल.एम.एस.' के प्रमाणपत्र को ले कर सुब्बाराव एक चिकित्सक के रूप में अमरीका पहुँचे। अतः सबसे पहले यहाँ उन्होंने 'हार्वर्ड मेडिकल स्कूल ऑफ ट्रोपोलॉजीकल मेडिसिन' से डिप्लोमा प्राप्त किया। इसके बाद यहाँ उन्हें 'कनिष्ठ संकाय सदस्य' के रूप में नौकरी मिल गयी। अपनी बातचीत से 'रसायन विज्ञान' में उनकी प्रतिभा व रुचि झलकने लगी। इसतरह 'हार्वर्ड' में वे 'चिकित्सक' के साथ ही 'रसायनज्ञ' नज़र आने लगे। यहाँ साइरस फिस्के प्रोफेसर थे। सुब्बाराव ने उनके निर्देशन में 'बायोकेमिस्ट्री' के क्षेत्र में शोध-कार्य आरंभ किया। और, यहीं उनका पहला महत्त्वपूर्ण आविष्कार हुआ, जिसमें उन्होंने एक ऐसे उपकरण और विधि (फिस्के-सुब्बाराव विधि) को विकसित किया, जिससे शरीर के ऊतकों (Tissues) तथा उसमें बह रहे 'तरल' में 'फास्फोरस' की मात्रा को ज्ञात किया जा सकता था। चिकित्सा के क्षेत्र में काम रहे डॉक्टरों ने इसे शीघ्र ही अपना लिया, जो आज तक विश्वभर में 'रेपीड केलोरीमिट्रिक मेथोड' के नाम से प्रचलन में है।

जागी `पाश्चात्य चिकित्सा विज्ञान' में गहरी रुचि

अमरीका में रहते हुए सुब्बाराव की कल्पनाओं ने उड़ान भरना आरंभ की। उन्हें लगा कि कई नयी-नयी बीमारियाँ ऐसी हैं, जिनके निदान में 'पाश्चात्य चिकित्सा विज्ञान' का बहुत योगदान हो सकता है तथा लागों को काल का ग्रास होने से बचाया जा सकता है। अतः अब उनमें 'पाश्चात्य चिकित्सा विज्ञान' में अनुसंधान करने

की रूचि जागने लगी। शीघ्र ही उन्होंने इस दिशा में अपने जीवन को लगाने का निर्णय लिया तथा तथा संकल्प के साथ शोध-कार्य में जुट गये। और, अल्प-समय में ही उन्होंने कई क्रांतिकारी खोजें कर डालीं। हालांकि उनकी कई खोजें ऐसी भी रहीं, जो उनके जीवित रहते कभी प्रकाश में ही नहीं आ सकीं। इसका पता बाद में तब चला, जब अमरीकी डॉक्टर तथा 1988 के 'चिकित्सा तथा शरीर विज्ञान' के नोबेल पुरस्कार विजेता जार्ज हिचिंग्स (जिन्हें किमोथेरापी पर उनके महत्त्वपूर्ण कार्य के लिए चुना गया था) ने कहा कि 'सुब्बाराव की कई खोजों को फिर से खोजा गया, क्योंकि ईर्ष्यावश उनके शोध निदेशक फिस्के ने उन्हें उन खोजों को कभी प्रकाशित ही नहीं होने दिया'। ये खोजे उन फॉस्फोरस के योगिकों से संबंधित थीं, जो संभवतः 'न्युक्लियोटाइड्स' थे। ये वे योगिक हैं, जो जीवकोशिका के न्यूक्लिक अम्ल 'आर.एन.ए.' के संश्लेषण में काम आते हैं। अगर उस समय फिस्के ने सुब्बाराव की इन खोजों को प्रकाशित होने दिया होता तो 'बायोटेक्नोलॉजी' ने बहुत पहले ही जन्म ले लिया होता। उनके ये अस्सी वर्ष पुराने अप्रकाशित शोधपत्र 'न्यू आर्काइव्स' पर पोस्ट किये गये हैं, जो ऑनलाइन उपलब्ध हैं। इस तरह जार्ज हिचिंग्स के उपर्युक्त कथन को कोई भी सत्यापित कर गर्व की अनुभूति कर सकता है।

विपरीत परिस्थितियों से जूझते रहे, पर मानव-सेवा के व्रत को तोड़ा नहीं

'हार्वर्ड' में सुब्बाराव कनिष्ठ संकाय सदस्य थे तथा उनका वेतन भी कम था अतः उन्हें बहुत ही कठिन दौर से गुजरना पड़ता था। अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए उन्हें अलग-अलग शिफ्ट में काम भी करना होता था। लेकिन, वे अपने मानव-सेवा के व्रत से कभी अलग नहीं हुए। बीच-बीच में उन्हें छात्रवृत्तियाँ मिलने लगी, जिससे वे बिना रूके शोध-कार्य करते रहे। समय-समय पर उन्हें अपने काम के लिए हार्वर्ड के प्रोफेसरों से प्रशंसा अवश्य मिलती, जिससे उन्हें अपना उत्साह बनाये रखने में मदद मिलती।

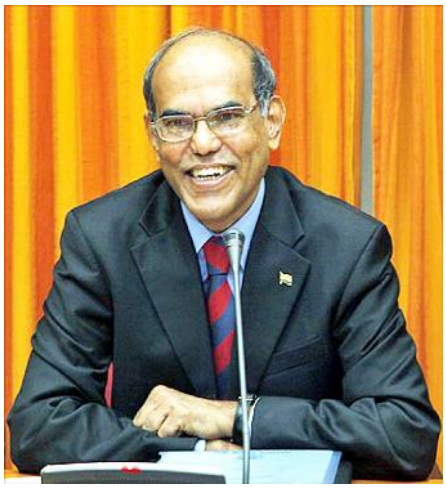

वे हमेशा अत्यंत 'लो-प्रोफाइल' में रहे। इस कारण सुब्बाराव, जिन्होंने चिकित्सा के क्षेत्र में क्रांतिकारी कार्य और दवाएं खोज कर लाखों लोगों के प्राणों को बचाने में अभूतपूर्व योगदान दिया, नजरअंदाज हो गये। 1995 में जा कर भारत सरकार को उनकी याद आयी और उनकी 'जन्म शताब्दी' पर उनकी स्मृति में एक 'डाक टिकट' जारी किया।

मांसपेशियों की गतिविधियों के संचालन के लिए आवश्यक ऊर्जा के स्रोत की खोज

हार्वर्ड में सुब्बाराव ने एक और महत्त्वपूर्ण अनुसंधान किया तथा बताया कि 'ए.टी.पी.' तथा 'फॉस्फोक्रिएटिन' मांसपेशियों की गतिविधियों के संचालन के लिए आवश्यक ऊर्जा का स्रोत है। यह इतनी मूलभूत और महत्त्वपूर्ण खोज थी कि 1930 की दशक में 'बायोकेमिस्ट्री' की पाठ्यपुस्तकों में इसे जोड़ा गया। 1930 में उन्हें अपने इस अनुसंधान पर 'पीएच.डी.' की उपाधि मिली, लेकिन हार्वर्ड ने उन्हें नियमित फेकल्टी नहीं बनाया। अतः जीवन में स्थिरता लाने के लिए उन्होंने 'हार्वर्ड' छोड़ दिया।

शोध पेटेंट में अपना नाम जोड़ने की कभी नहीं की कोई कोशिश

'हार्वर्ड' छोड़ने के बाद सुब्बाराव ने एक फार्मासूटिकल (औषधीय) कम्पनी 'लेडर्ले लेबोरेटोरीज' को जॉइन किया। यहाँ उन्होंने अपनी रूचि की बीमारियों पर काम करने तथा उनके निदान के लिए दवाओं को खोजने के लिए शोधकर्ताओं की अपनी एक टीम बनाई। उनके निर्देशन में टीम शोध-कार्य में जुट गई। लेकिन, उन्होंने कभी इसका श्रेय नहीं लिया। उन्होंने कभी अपने व्यावसायिक हित के बारे में नहीं सोचा। इसीलिए उन्होंने अपने निर्देशन में हुए शोध से जुड़े किसी भी 'पेटेंट' में अपना नाम जोड़ने की कभी कोई कोशिश नहीं की, जो सामान्यतः सभी वैज्ञानिक करते हैं। अपनी खोजों के बारे में उन्होंने कभी प्रेस में साक्षात्कार नहीं दिया और न ही उन्होंने अपना प्रभाव जमाने के लिए अकादमियों के दौरे किये और व्याख्यान दिये। वे तो बस मानवता की सेवा और लोगों को रोगमुक्त करने के रास्ते खोजने में आनंद की अनुभूति करते थे। वे समझते थे कि मानव-हित में 'खोज करना जरूरी है, न कि श्रेय लेने या पुरस्कार पाने के लिए जोड़-तोड़ करना'।

'कैंसर' तथा 'हत्तीरोग' के निदान हेतु दवाओं की खोज

'लेडर्ले लेबोरेटोरीज' में सुब्बाराव ने 'फोलिक अम्ल' की खोज की जिसे 'विटामिन बी-9' के नाम से जाना जाता है। अपने इस कार्य को आगे बढ़ाते हुए उन्होंने दुनिया के पहले कीमोथेपी एजेंट 'मिथोट्रेक्सेट' का संश्लेषण किया। यह दवा आज भी व्यापक प्रयोग में लाई जाती है। उन्होंने 'डाइईथाइलकार्बेमेझीन' की खोज की, जो 'हेट्राझेन' के नाम से बाजार में उपलब्ध है। यह दवा 'हत्तीरोग' के इलाज के लिए प्रयुक्त की जाती है। 'विश्व स्वास्थ्य संगठन' ने इस दवा का बहुत उपयोग किया है। उन्होंने 'हेट्राजेन' नामक दवा भी खोजी। यह पशुओं में होने वाली बीमारी 'तंतुमयता यानि फाइब्रोसिस' के इलाज में काम ली जाती है।

पहली एंटीबायोटिक दवा की खोज

सुब्बाराव की प्रतिभा को देखते हुए 'अमेरिकन साइनामिड कम्पनी' ने उन्हें अपनी 'लेडर्ले लेबोरेटोरीज' का निदेशक बना दिया, जहाँ वे अपनी मृत्युपर्यंत 1948 तक काम करते रहे तथा वहाँ की शोध और विकास गतिविधियों को दिशा देते रहे। यहाँ उन्होंने 'पेनीसिलिन' के बड़े पैमाने पर निर्माण के लिए 'डीप टैंक प्रॉडक्शन तकनीक' का विकास किया। उनकी तकनीक अलेक्जेंडर फ्लेमिंग की तकनीक से अलग थी। यह वह समय था, जब द्वितीय विश्वयुद्ध चल रहा था। अतः कारगर तथा तत्काल लाभ देने

वाली प्रभावशाली एंटीबायोटिक दवाओं की बहुत आवश्यकता थी। अतः उनकी प्रयोगशाला में इस दिशा में शोध-कार्य आरंभ हुआ। उनके मार्गदर्शन में उनके सहयोगी बेंजामिन डुग्गर ने दुनिया की पहली एंटीबायोटिक दवा 'क्लोर-टेट्रासाइक्लिन' 'औरोमाइसिन' की खोज की।

सम्मान और मान्यताओं से रहे वंचित

हमारे समाज में कई अकिर्तित नायकों की तरह सुब्बाराव भी रहे। उन्होंने इतनी खामोशी से मानव-कल्याण के लिए काम किया कि कोई उन अनुसंधानकर्ताओं को जान ही नहीं पाया, जिनकी खोजों का वे लाभ वे उठा रहे हैं। और, इस तरह वे अकिर्तित ही रह गये। भारत में कई वैज्ञानिक अपनी व्यक्तिगत उपलब्धियों के प्रकाशित होने के कारण सम्मानित किये गये और देश के विज्ञान-इतिहास में बहुत सम्माननीय हुए। लेकिन, उन्होंने कभी स्वयं अपनी प्रशंसा नहीं की और न ही कभी पुरस्कार पाने के लिए कोई प्रयास किये। वे हमेशा अत्यंत 'लो-प्रोफाइल' में रहे। इस कारण सुब्बाराव, जिन्होंने चिकित्सा के क्षेत्र में क्रांतिकारी कार्य और दवाएं खोज कर लाखों लोगों के प्राणों को बचाने में अभूतपूर्व योगदान दिया, नजरअंदाज हो गये। 1995 में जा कर भारत सरकार को उनकी याद आयी और उनकी 'जन्म शताब्दी' पर उनकी स्मृति में एक 'डाक टिकट' जारी किया। हालांकि मरणोपरांत भी देश के महान सपूतों को 'नागरिक सम्मानों' से नवाज़ा जाता है, लेकिन अब तक बनी किसी भी सरकार ने इस पर विचार नहीं किया है। हालांकि 'अमेरिकन साइनामिड कम्पनी' ने उनकी चकित कर देने वाली खोजों से प्रभावित हो कर उन्हें सम्मानित करने के लिए एक नये फंगस का नाम उनके नाम पर 'सुब्बारोमाइसिस स्प्लेंडेस' रखा है। विश्वविख्यात पत्रिका 'टाइम' ने उनके शोध कार्यों पर एक विशेष अंक भी निकाला है। उनकी स्मृति को चिर-स्थाई बनाने के लिए तथा अध्ययनरत विद्यार्थियों में प्रेरणा जगाने के लिए 'निजाम इंस्टीट्यूट ऑफ मेडिकल साइंसेस', हैदराबाद ने अपने कैम्पस में उनकी एक मूर्ति भी लगाई गयी है।

सुब्बाराव की कई खोजें रही नोबेल पुरस्कार की सच्ची अधिकारी

आज विज्ञान जगत का मानना है कि सुब्बाराव को एक नहीं कई 'नोबेल पुरस्कार' मिल जाने चाहिए थे। अगर हम उनकी शोध-यात्रा को देखें तो हम पाते हैं कि उन्होंने अपनी छोटी सी उम्र में कई चकित कर देने वाले से आविष्कार किये हैं, जिनमें से कई 'नोबेल पुरस्कार' पाने के अधिकारी थे। लेकिन, 'नोबेल पुरस्कार' सिर्फ जीवित व्यक्तियों को ही प्रदान किया जाता है। हालांकि कई बार पुरस्कार मिलने में इतनी देर हो जाती है कि व्यक्ति अपनी वृद्धावस्था में पहुँच जाता है। अगर हम इस वर्ष 2018 के भौतिकी के 'नोबेल पुरस्कार' को ही देखें तो वह आर्थर एश्किन को 96 वर्ष की उम्र में मिला है। पूर्व में भी नोबेल पुरस्कारों के साथ अक्सर ऐसा ही होता आया है। ऐसे में कई बार अपने श्रेष्ठ अनुसंधान के बावजूद वैज्ञानिक 'नोबेल पुरस्कार' से वंचित रह जाते हैं। दुर्भाग्य से सुब्बाराव सिर्फ 53 वर्ष की आयु तक ही जिये। इसीलिए लोग कहते हैं कि अगर 'नोबेल पुरस्कार' पाना है तो 'कम उम्र में क्रांतिकारी और समाज के हित में लोक-कल्याणकारी शोध-कार्य करो तथा फिर भगवान से अपनी लम्बी उम्र के लिए प्रार्थना करो'।

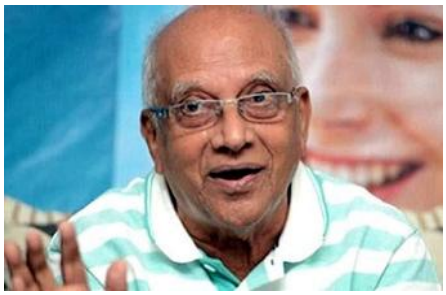

आज अगर एक ऐसे `विशिष्ट नोबल पुरस्कार' की योजना सामने आ जाए, जिसमें उन लोगों के लिए पुरस्कार की व्यवस्था हो, जो बिल्कुल अनजाने रहते हुए ही विश्व से विदा हो गये, लेकिन उनकी खोजों ने बाद में आने वाले कई वैज्ञानिकों की राह रोशन की हो, तो उस सूची में पहला नाम निर्विवाद रूप से सुब्बाराव का ही होगा।

विदेशी धरती पर क्रांतिकारी परिवर्तन लाने वाले पहले वैज्ञानिक

सुब्बाराव 'महान' बन कर पैदा नहीं हुए। अपने जीवन में उन्होंने जिस 'महानता' को हासिल किया, वह उन्हें अपनी कल्पनाओं के घोड़ों को दौड़ा कर उन्हें व्यवहारिक धरातल पर उतारने, आत्मविश्वास के साथ कदम बढ़ाने, मानव-सेवा के संकल्प को ले कर उसे पूरा करने, विपरीत परिस्थितियों में धैर्य को बनाये रखने तथा मानव-पीड़ा को कम करने की अपनी दिली इच्छा को पूरा करने के कारण मिली है। संभवतः उनके जैसी इतनी अधिक मानव-कल्याणकारी खोजें तथा मौलिक शोध-कार्य किसी भी भारतीय वैज्ञानिक ने विदेशी धरती पर रहते हुए नहीं किया। उनके शोध-कार्यों ने 'मौलिक तथा व्यवहारिक विज्ञान' की एक लम्बी रैंज को क्रांतिकारी रूप से बदल दिया। काम करते हुए उन्होंने अपने बारे में कुछ बोला नहीं लेकिन, उनके काम ने उनके बारे में बहुत जोर से बोला। आज अगर एक ऐसे 'विशिष्ट नोबल पुरस्कार' की योजना सामने आ जाए, जिसमें उन लोगों के लिए पुरस्कार की व्यवस्था हो, जो बिल्कुल अनजाने रहते हुए ही विश्व से विदा हो गये, लेकिन उनकी खोजों ने बाद में आने वाले कई वैज्ञानिकों की राह रोशन की हो, तो उस सूची में पहला नाम निर्विवाद रूप से सुब्बाराव का ही होगा।

प्रेरणा बन कर जीवित

सुब्बाराव एक ऋषि सदृश्य वैज्ञानिक थे, जिनकी मानव-सेवा के अतिरिक्त अन्य कोई भौतिक लालसा नहीं थी। उन्होंने अपनी कई शोधों का श्रेय भी नहीं लिया और न ही पेटेंट कर उनसे धन कमाया। वे 'चिकित्सा विज्ञान' में अपने द्वारा की जा रही खोजों में भगवान के दर्शन करते थे तथा उन्हें मानव-सेवा का साधन मानते थे। इसीलिए असाध्य बीमारियों के लिए दवा खोजने में सलग्न रहना, उन्होंने अपने जीवन का लक्ष्य बना लिया था। यही कारण रहा कि मृत्युशय्या पर रहते समय भी उन्होंने अपनी टीम के साथियों से कहा कि 'अगर भगवान मुझे दो वर्ष का और समय देदे, तो हम कुछ और असाध्य बीमारियों का इलाज कर सकेंगे'। सुब्बाराव की मृत्यु 9 अगस्त 1948 को अल्पायु में ही हो गयी, लेकिन आज भी वे युवा वैज्ञानिकों के दिलों में प्रेरणा बन कर जीवित हैं।

kapurmaljain2@gmail.com

पॉलीमर इंजीनियरिंग

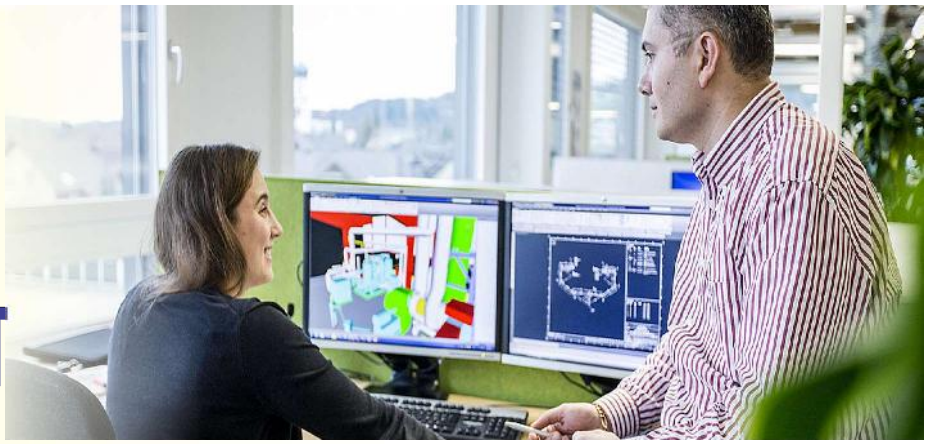

संजय गोस्वामी

संजय गोस्वामी विगत पंद्रह वर्षों से विज्ञान लेखन से जुड़े हैं आपने हिन्दी विज्ञान के क्षेत्र में तीन सौ से अधिक कॅरियर लेख लिखे हैं जो विज्ञान विषयक होते हैं। 'इलेक्ट्रॉनिकी आपके लिये' में वे विगत लगभग पांच वर्षों से शृंखलाबद्ध लिख रहे हैं। इसके अतिरिक्त विज्ञान लेख, विज्ञान समाचार, विज्ञान कविता, विज्ञान रपट, विज्ञान समीक्षा आदि का लेखन और प्रकाशन हुआ है। कई पुरस्कारों से सम्मानित संजय गोस्वामी हिन्दी विज्ञान साहित्य परिषद्, भा.प.अ. केन्द्र, मुंबई के कार्यकारी सदस्य हैं। आप इन दिनों मुंबई में रहकर हिन्दी विज्ञान पत्रिका में लेखन एवं संपादन से संबद्ध हैं।

पॉलीमर को हिंदी में बहुलक कहते हैं पॉलिमर को समझने के लिए, हमें सबसे पहले मोनोमर को जानने की जरूरत है, जो एक अणु है जिसमें कम से कम दो अन्य मोनोमर्स के साथ जुड़ने की क्षमता होती है। पॉलिमराइजेशन दो या दो से अधिक सरल अणुओं का मिलन है पॉलिमराइजेशन की डिग्री का आधार मोनोमर की कार्यक्षमता है मोनोमर्स द्वारा बनाई गई बांडों की संख्या बहुलक के परिणामस्वरूप रासायनिक संरचना को निर्धारित करती है। यदि केवल दो अन्य अणुओं के साथ एक मोनोमर बांड होता है, तो परिणाम एक चेन जैसी संरचना है। यदि यह तीन या अधिक अणुओं के साथ बांड होता है तो तीन आयामी, क्रॉस-लिंक्ड स्ट्रक्चर बना सकते हैं जुड़ने की प्रक्रिया को पॉलिमराइजेशन कहा जाता है, जिसमें इलेक्ट्रॉनों के जोड़े को साझा करके एक ही या विभिन्न प्रकार के दो अलग-अलग अणु होते हैं। जैसे $nCH_2=CH_2$——>$(-CH_2-CH_2-CH_2)n$——>$(-CH_2-CH-)$ वहुलक या पालीमर बहुत अधिक अणु मात्रा वाला कार्बनिक यौगिक होता है। बांड या समूहों की संख्या जो यह निर्धारित करेगा कि क्या मोनोमर मोनो होगा-, द्वि-, त्रि-, या पाली यह सरल अणुओं जिन्हें मोनोमर कहा जाता है असंतृप्त हाइड्रोकार्बन के लाखों छोटे अणुओं जिन्हें एकाकी अणु या एकक कहते हैं, के जुड़ने से बहुलक का निर्माण होता है। अणुओं के इस प्रकार के जोड़ को बहुलकीकरण कहते हैं। बहुलक का मुख्य उपयोग नाम- पॉलिथीन एथिलीन, प्लास्टिक के निर्माण में पॉलिस्टरीन स्टायरीन, अण्डे के कार्टन,गर्म पेय पात्र, आदि के निर्माण में पॉलिविनाइल मोनोविनाइल क्लोराइड ,पी.वी.सी.पाइप, हैण्ड बैग क्लोराइड इत्यादि के निर्माण में पॉलीटेट्रा- टेट्राफ्लोरोएथिलीन नॉन-स्टिक बर्तन के फ्लूरो एथलीन निर्माण में या टेफ्लॉन नोवोलक फिनॉर्लफार्मल्डिहाइड रेडियो कैबिनेट तथा कैमरों के आवरण रेजिन निर्माण में पॉली विनाइल विनाइल एसिटेट लैटेक्स पेन्ट तथा एसिटेट आसंजक के निर्माण में पॉलीकार्बोनेट बुलेटप्रूफ जैकेट इत्यादि के निर्माण में होता है। पॉलीमेराइजेशन के फलस्वरूप बहुत अधिक रासायनिक सामग्री बनता है ।पॉलिमर को आमतौर पर निम्न आधार पर वर्गीकृत किया जाता है -1. भौतिक और रासायनिक संरचनाएँ। 2.पॉलिमर तैयारी के तरीके 3.भौतिक गुण 4. पॉलिमर का अनुप्रयोग। पॉलिमर को भौतिक गुणों के अनुसार निम्नलिखित रूप में वर्गीकृत किया जा सकता है -

1. थर्माप्लास्टिक 2. थर्मो सेटिंग 3. इलास्टोमर 4. फाइबर(रेशे)। इसमें कार्य करने वाले प्रोफेशनल्स को 'पॉलिमर इंजीनियर' कहलाता है।

अवसर

इसमें रोजगार के असीमित अवसर हैं। वर्तमान में कई बहुराष्ट्रीय कंपनियां (रिलायंस, एसएबीआईसी, ड्यूपॉन्ट, डॉव, इत्यादि) और अनुसंधान प्रयोगशालाएं (जेएपीएल, एनसीएल, सीपीआरआई, एनएमएल इत्यादि) इस क्षेत्र में अनुसंधान काम कर रही हैं। भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान, रुड़की तथा आईआईटी में भी पॉलीमर इंजीनियरिंग के क्षेत्र में बहुत सारे शोध कार्य चल रहे हैं। कई प्रोफेसर, शोध विद्वान, अंडरग्रेड पॉलिमर के क्षेत्र में अपना शोध कार्य कर रहे हैं। इसलिए, यदि आप रसायन शास्त्र पसंद करते हैं और शोध में रुचि रखते हैं तो आप इस पॉलिमर इंजीनियरिंग के क्षेत्र में अच्छा करियर बना सकते हैं। मानव निर्मित पॉलिमर अक्सर सामान्यतः प्लास्टिक के रूप में संदर्भित होते हैंय वे कई घरों और औद्योगिक उपयोगों के साथ विभिन्न रूपों में आकार और ढाला जा सकता है अधिकांश सिंथेटिक पॉलिमर पेट्रोलियम तेल से प्राप्त होते हैं, और

विभिन्न प्रकारों में नायलॉन, पॉलीथीन, पॉलिएस्टर, रेयान, टेफ्लॉन और एपॉक्सी शामिल होते हैं। प्लास्टिक या रबड़ की वस्तुएं जो आपको हर रोज मिलती हैं, वे सब प्रकार के बहुलक हैं। इसलिये बहुलक हमारे जीवन के लिए जरुरी है। बहुलक से रोजमर्रा के जीवन में इस्तेमाल हेतु कई वस्तुओं बनते हैं जैसे प्लास्टिक के कंटेनर, नायलॉन उत्पाद, रबर टायर और कई अन्य बहुलक सामग्री। पॉलीइथिलीन के विभिन्न प्रकार हैं {(CH2-CH2) n} जैसे कि कम घनत्व, मध्यम घनत्व और उच्च घनत्व पॉलीथीन (संक्षिप्त रूप से LDPE, MDPE और HDPE) बनाया जाता है। पॉलिमर प्लास्टिक, फाइबर, रेक्सिन (कृत्रिम) और विस्फोटक जैसी सामग्रियों के रूप में अनुप्रयोग होता है

संभावना

पॉलिमर पदार्थों की बढ़ती मांग के चलते इसमें रोजगार की संभावना तेजी से बढ़ी है। सामान्यतः पॉलिमर इंजीनियरिंग को रसायनिक इंजीनियरिंग की एक शाखा के रूप में जाना जाता है, जिसके अंतर्गत पॉलिमर यौगिक, पॉलिमर मिश्रित सामग्री कार्बन ब्लैक, कैल्शियम कार्बोनेट, टाइटेनियमऑक्साइड, नैनो क्ले, ग्लास फाइबर, ऑर्गेनिक फिलर्स, नैनोफिलर्स, प्रोसेसिंग एड्स, फ्लेम रिटार्डेंट्स, इत्यादि पॉलिमर पदार्थों एवं केमिकल्स को किसी प्रयोग की चीज के लिये बनाया जाता है, जबकि मॉडर्न पॉलिमर इंजीनियरिंग कच्चे पॉलिमर पदार्थों को बनाने के साथ-साथ नैनोटेक्नॉलॉजी और बायोमेडिकल तकनीक पर भी बल देता है। इसमें पॉलिमर पदार्थों को विभिन्न प्रक्रियाओं के तहत आवश्यक पदार्थों में तब्दील किया जाता है। इसमें नए मेटेरियल एवं तकनीकों की खोज भी की जाती है। इंजीनियरिंग की ही शाखा होने के कारण इसका कार्यस्वरूप काफी कुछ केमिस्ट्री एवं फिजिक्स से मिलता-जुलता है। पॉलिमर इंजीनियर का कार्य केवल पॉलिमर पदार्थों के डिजाइन एवं मेंटेनेंस तक ही सीमित नहीं होता, बल्कि कई परिस्थितियों में उन्हें कॉस्ट कटिंग एवं प्रोडक्शन कार्यों को भी करना पड़ता है। बेहतरीन कम्युनिकेशन स्किल्स का होना भी जरूरी है पॉलिमर विज्ञान में बी.एससी करने के बाद आप केमिस्ट, इंडस्ट्रियल रिसर्च साइंटिस्ट, मैटेरियल टेक्नॉलॉजिस्ट, क्वालिटी कंट्रोलर, प्रॉडक्शन आफिसर और सेफ्टी हेल्थ एंड इन्वाइरॅनमेंट स्पेशलिस्ट जैसे पदों पर काम

कर सकते हैं। पॉलिमर टेक्नॉलॉजिस्ट की मांग फार्मास्यूटिकल, एग्रोकेमिकल, पेट्रोकेमिकल, प्लास्टिक मैन्यूफैक्चरिंग, केमिकल मैन्यूफैक्चरिंग, फूड प्रोसेसिंग, पेंट मैन्यूफैक्चरिंग, टैक्सटाइल्स, फोरेंसिक और सिरेमिक्स जैसी इंडस्ट्रीज में है। यह हमेशा एक बेहतर विकल्प है। आप मेसाचुसेट्स, टेक्सास, डेलावेयर, मिनियोस्टा, केयू लियूवन, आक्रॉन इत्यादि जैसे शीर्ष विश्वविद्यालयों से पी-एच. डी. कर सकते हैं।

क्षेत्र

बीई या बीटेक पॉलिमर इंजीनियरिंग में मुख्यत में मुख्य रूप से पॉलिमर सामग्री और यौगिक, मोल्ड और डाई डिजाइन, पॉलिमर प्रसंस्करण संचालन, पॉलिमर रिएक्शन इंजीनियरिंग, सतह कोटिंग प्रौद्योगिकी, कम्पोजिट प्रौद्योगिकी इंडस्ट्रियल केमिस्ट्री, पॉलीमर टेक्नॉलॉजी, पॉलीमर प्रोसेसिंग, पॉलीमर टेस्टिंग, पॉलीमर सिंथेसिस आदि विषय हैं तथा एम ई स्तर के पाठ्यक्रम में मुख्य रूप से तरल क्रिस्टलीय पॉलिमर का परिचय, और इतिहास, तरल क्रिस्टलीय के प्रकार (LC) चरण, तरल के प्रकार, क्रिस्टलीय पॉलिमर, अनिसोट्रोपिक गुण, एल सी मिश्रणों और कंपोजिट, एलसी इलास्टोमर्स, तरल क्रिस्टलीय पॉलिमर के रियोलॉजी, एल सी पॉलिमर के अनुप्रयोग-ऑप्टिकल, उच्च शक्ति फाइबर, एमईएमएस आदि की जानकारी दी जाती है। उपयुक्त आवश्यकता के साथ, बहुलक इंजीनियरों बहुलक विनिर्माण और उपयोगकर्ता उद्योग का हिस्सा बन सकते हैं। उन्हें कई निजी और सार्वजनिक क्षेत्र की पॉलिमर कंपनियों में पॉलिमर इंजीनियर, उत्पादन इंजीनियर, पर्यवेक्षक, गुणवत्ता नियंत्रण निरीक्षक, मोल्ड डिजाइनर और उत्पादन योजनाकार के रूप में नियोजित किया जाता है। वे देश के विभिन्न पॉलिमर कंपनी, पेट्रोलियम और प्राकृतिक गैस मंत्रालय, तेल और प्राकृतिक गैस आयोग (ओएनजीसी), तेल प्रयोगशालाओं, पेट्रोकेमिकल्स इंजीनियरिंग संयंत्र, पेट्रोलियम संस्थान, पेट्रोलियम संरक्षण अनुसंधान संघ, में पॉलिमर इंजीनियर या बहुलक वैज्ञानिक के रूप में काम कर सकते हैं, और ऐसे अन्य पॉलिमर इंजीनियरिंग संगठन/संस्थानों में प्रौद्योगिकी-विद या प्रोफेसर के रूप में नौकरी पढ़ाने और काम करने का विकल्प भी चुन सकते हैं। पॉलिमर इंजीनियर को प्रसंस्करण, गुणवत्ता नियंत्रण, तकनीकी सहायता और बिक्री, डिजाइन और मोल्ड, प्रशिक्षण, प्रबंधन और शोध और विकास संबंधित गतिविधियों के निर्माण में नौकरी के अवसर मिलते हैं।

प्लेसमेंट

मुख्य रूप से इन क्षेत्रों (रबड़, फाइबर, चमड़े, पेट्रोकेमिकल्स, लुगदी और कागज, प्लास्टिक, टायर इत्यादि) के उद्योग पॉलिमर इंजीनियरों में रुचि रखते हैं। रिलायंस, एसएबीआईसी, ड्यूपॉन्ट, अपोलो, एमआरएफ, एक्सोनमोबिल, सोलवे केमिकल्स, जीई प्लास्टिक्स, जेके टायर्स, डॉव आदि जैसी कंपनियां पॉलिमर इंजीनियरों को लेती हैं।

प्रवेश परीक्षा

पॉलिमर इंजीनियरिंग में बैचलर ऑफ इंजीनियरिंग की अवधि चार साल है इसमें प्रवेश लेने के लिए आईआईटी जेईई या अन्य प्रवेश परीक्षाओं में बैठना अनिवार्य है। इसमें कुछ परीक्षा ऑल इंडिया अथवा कुछ स्टेट लेवल पर आयोजित की जाती हैं। इनमें उत्तीर्ण होने के पश्चात ही प्रमुख कोर्सों में प्रवेश मिल पाता है।

योग्यता

पॉलिमर इंजीनियरिंग में ग्रेजुएशन करने के लिए फिजिक्स, कैमिस्ट्री और मैथ्स विषयों में के साथ 12वीं पास करना जरूरी है। जेईई/सीईटी के माध्यम से मेरिट सूची के आधार पर विभिन्न इंजीनियरिंग कॉलेज में पॉलिमर इंजीनियरिंग में

ग्रेजुएशन का कोर्स ज्वाइन किया जाता है। अगर अभ्यर्थी के पास पॉलिमर/प्लास्टिक इंजीनियरिंग में डिप्लोमा योग्यता है तो वह पॉलिमर इंजीनियरिंग के ग्रेजुएशन कोर्स में दाखिला ले सकते हैं।

कुछ प्रमुख कोर्स

- डिप्लोमा इन पॉलिमर इंजीनियरिंग
- बैचलर ऑफ इंजीनियरिंग इन पॉलिमर इंजीनियरिंग ● बैचलर ऑफ इंजीनियरिंग (पेट्रोकेमिकल्स एंड पॉलिमरिक सामग्री)
- बैचलर ऑफ पॉलिमर साइंस ● बैचलर ऑफ टेक्नॉलॉजी इन पॉलिमर इंजीनियरिंग
- मास्टर ऑफ इंजीनियरिंग इन पॉलिमर इंजीनियरिंग ● मास्टर ऑफ साइंस इन पॉलिमर इंजीनियिरग ● मास्टर ऑफ टेक्नॉलॉजी इन पॉलिमर इंजीनियरिंग ● इंट्रिग्रेटेड एमटेक इन पॉलिमर इंजीनियरिंग
- पोस्ट डिप्लोमा इन पॉलिमर टेक्नॉलॉजी

मुख्य विषय

पॉलिमर इंजीनियरिंग में कई विषयों के अध्ययन के लिए मैकेनिकल, केमिकल और इलेक्ट्रॉनिक्स विषय का ज्ञान आवश्यक है पॉलिमर से संबंधित विषय हैं कुछ उप विषय हैं: पॉलिमर और पॉलिमर कंपोजिट, औद्योगिक प्रबंधन, डिजाइन और विश्लेषण पॉलिमर प्रसंस्करण- उन्नत पॉलिमर विज्ञान, कंपाउंडिंग प्रैक्टिस, मिक्सिंग टाइप, सॉलिड एडिटिव्स, मॉर्फोलॉजी, कंपाउंडिंग यौगिकों का परिचय, प्रकार और विशेषताएं-बहुलक मिश्रण, इंटरलासियल एजेंट, बहुलक पिघल में बहुलक नैनोकणों का फैलाव मास्टर बैच, रंग सिद्धांत, पॉलिमर यौगिक पॉलिमर मिश्रित सामग्री, भराव और सुदृढीकरण। मिक्सिंग मशीनरी एंड डिवाइसेस कार्बन ब्लैक, कैल्शियम कार्बोनेट, टाइटेनियम ऑक्साइड, नैनो क्ले, ग्लास फाइबर, ऑर्गेनिक फिलर्स, नैनोफिलर्स, प्रोसेसिंग एड्स, फ्लेम रिटार्डेंट्स, इत्यादि, मल्टीकम्पोनेंट, यौगिक, पॉलियोलेफिन, पॉलीस्टाइनिन और स्टाइरीन कोपोलिमर के यौगिक, कंपाउंडिंग अर्थशास्त्र आदि विषय है, थर्मोसेटिंग एक्रिलिक्स, ऐक्रेलिक पॉलिमर और सह-बहुलक, विभिन्न तकनीकों का संश्लेषण। थर्मोसेटिंग एक्रिलिक्स के संरचना संपत्ति संबंध अनुप्रयोग, जैसे एनारोबिक चिपकने वाला, रेजिन, आदि अल्कीड रेजिन है,पॉलिमर यौगिक के मिक्सिंग और कंपाउंडिंग एप्लिकेशन के लिये, प्लास्टिक, कंपाउंडिंग, ग्लास फाइबर

कंपाउंडिंग, नैनो-कम्पोजिट है, पॉलिमर के रीसाइक्लिंग अनुप्रयोग के लिए उपयोग किए जाने वाले एडिटिव्स, मिश्रित यौगिक, पॉलिमर, इलास्टोमेर कंपाउंडिंग एनआर, एसबीआर, बीआर, आईआर, ईपीडीएम आदि हैं। मोनोमर, कंपाउंडिंग, सामग्री के लिए असंतृप्त पॉलिएस्टर अन्य पॉलिमर, केबल और प्रोफाइल एक्सट्रूजन के लिए कंपाउंडिंग, कंपाउंडिंग मशीनरी और डिवाइसेस इस्तेमाल किया जाता है यह गुणवत्ता के लिए महत्वपूर्ण है पॉलिमर इंजीनियरिंग में केमिकल इंजीनियरिंग ऑपरेशंस रासायनिक प्रतिक्रिया इंजीनियरिंग थर्माप्लास्टिक्स पॉलिमर टेक्नॉलॉजी थर्मोसेट पॉलिमर की तकनीक आदि मुख्य विषय हैं पॉलिमर इंजीनियरिंग में कंडक्टिंग पॉलिमर इलेक्ट्रॉनिक्स पर आधारित है।

कंडक्टिंग पॉलिमर में कंडक्टर का सिद्धांत, अर्ध चालक और पॉलिमर का संचालन, बैंड सिद्धांत, बहुलक की आवश्यकताएं, कंडक्टर के रूप में काम करने के लिए, पॉलिमर के संचालन के प्रकार - आंतरिक और बाह्य, बहुलक के डोपिंग पॉलिमर, अनुप्रयोगों और हाल के अग्रिमों के संचालन, संश्लेषण, प्रसंस्करण और परीक्षण -इलेक्ट्रोल्यूमिनिसेंस जंग अवरोध, माइक्रो-इलेक्ट्रॉनिक, झिल्ली, सेंसर, आदि की जानकारी दी जाती है।

मांग

पॉलिमर इंजीनियरिंग में कपड़ा, एलक्रोकैमोमेकेनिकल डिवाइस, कोटिंग ईप्लांट डिजाइन, पेट्रोलियम रिफाइन, फर्टिलाइजर टेक्नॉलॉजी, पेट्रोकेमिकल्स, सिंथेटिक फाइबर्स, प्रोसेसिंग ऑफ फूड एंड एग्रीकल्चरल प्रोडक्ट्स, रबड़ और प्लास्टिक जैसी इंडस्ट्रीज में पेशेवरों की मांग बनी हुई है। रबड़ और प्लास्टिक दोनों पॉलिमर के प्रकार हैं।

आय

एक फ्रेशर पॉलिमर इंजीनियर के तौर पर आपकी सैलरी 30-40 हजार रुपए होगी। कुछ अनुभव के बाद आपकी सैलरी 50-80 हजार रुपए हो सकती है।

प्रमुख संस्थान

- भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान, मुंबई
- भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान (आईआईटी), नई दिल्ली
- बिड़ला इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नॉलॉजी, मेसरा, रांची
- दिल्ली विश्वविद्यालय ,नई दिल्ली
- मद्रास विश्वविद्यालय, चेन्नई
- संत लोंगोवाल इंस्टीट्यूट ऑफ इंजीनियरिंग एंड टेक्नॉलॉजी, संगरूर, पंजाब
- कोचीन विश्वविद्यालय विज्ञान और प्रौद्योगिकी (सीयूएसएटी), कोच्चि
- महाराष्ट्र प्रौद्योगिकी संस्थान (एमआईटी), पुणे
- राष्ट्रीय प्रौद्योगिकी संस्थान, कालीकट
- दिल्ली कॉलेज ऑफ इंजीनियरिंग, नई दिल्ली
- हिंदुस्तान इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नॉलॉजी एंड साइंस, मैसूर
- श्री जयचमारजेन्द्र कॉलेज ऑफ इंजीनियरिंग, मैसूर
- एसएसई (श्री शिवाजी एजुकेशन) सोसाइटी कॉलेज ऑफ इंजीनियरिंग एंड टेक्नॉलॉजी, अकोला, महाराष्ट्र
- यूनिवर्सिटी कॉलेज ऑफ इंजीनियरिंग, थोडुपुझा, केरल
- वीआरएस और वाईआरएन कॉलेज ऑफ टेक्नॉलॉजी, तेल प्रौद्योगिकी विभाग, चिराला, आंध्र प्रदेश।

goswamisanjay80@gmail.com

जब दिखेगा सुपरमून और बुद्ध ग्रह

इरफान ह्यूमन

डॉ. इरफान ह्यूमन विगत पच्चीस वर्षों से 'साइंस न्यूज एण्ड व्यूज़' मासिक विज्ञान पत्रिका का संपादन व प्रकाशन कर रहे हैं। आप विज्ञान लोकप्रियकरण कार्यक्रमों के माध्यम से देशभर में वैज्ञानिक जागरुकता के लिए प्रयासरत हैं। आपके एक हजार से अधिक लेख प्रकाशित हुए हैं, आकाशवाणी से अनेक विज्ञानवार्ताओं का प्रसारण हुआ है, विज्ञान धारावाहिक लेखन तथा विज्ञान डाक्यूमेंट्री फिल्मों के निर्माण में आपका बड़ा योगदान है। मुंबई में साइंस फिल्म फेस्टिवल आपकी फिल्में प्रदर्शित हुई हैं। विज्ञान लेखन तथा विज्ञान लोकप्रियकरण के लिए आपको कई सम्मान प्राप्त हैं तथा कई वैज्ञानिक संस्थाओं के मानद हैं। वर्तमान में आप शाहजहाँपुर उ.प्र. में निवासरत हैं।

इस माह रात के आकाश में सुपरमून के दर्शन किये जा सकते हैं। 19 फरवरी को चन्द्रमा असामान्य रूप से आकार में बड़ा होने के साथ अधिक चमकदार दिखाई देगा, इस घटना को ''सुपरमून'' के नाम से जाना जाता है। इस खगोलीय घटना के दौरान चाँद, पृथ्वी के सबसे नजदीकी स्थिति में आ जाता है, जिसके परिणामस्वरूप पृथ्वी से चाँद सामान्य दिखने वाले आकार से अधिक बड़ा दिखाई देता है। ऐसा माना जाता है कि इस दौरान समुद्र में ज्वार आने के साथ साथ उन चट्टानों में भी ज्वार आता है। इस कारण भूकंप की घटना होती है, लेकिन इसका कोई ठोस वैज्ञानिक प्रमाण नहीं है। हाँ, यह अवश्य है कि जब चन्द्रमा धरती के सबसे करीब होता है, इस कारण सबसे अधिक गुरुत्वीय खिंचाव उत्पन्न होने से यह समुद्र में उच्च ज्वार को जन्म देता है।

पृथ्वी का चक्कर लगाते समय चन्द्रमा के नजदीकी बिंदु उपभू (पेरीजी) की दूरी सुपरमून वाले दिन 382,500 किलोमीटर से कम हो जाती है। उपभू चंद्रमा के दीर्घवृत्ताकार पथ पर वह बिंदु है जहाँ इसकी आकर्षण के केंद्र अर्थात् पृथ्वी के केंद्र से दूरी न्यूनतम होती है। ध्यान रहे पृथ्वी के मध्य से चन्द्रमा के मध्य तक की सामान्य दूरी 382,500 किलोमीटर या 237,700 मील होती है।

चन्द्रमा जब धरती का चक्कर लगाते हुए और अपनी कक्षा में घूमते हुए पृथ्वी के सबसे निकट आ जाता है तो यह सामान्य आकार से 14 प्रतिशत बड़ा और 30 प्रतिशत अधिक चमकदार नज़र आता है, इसे खगोलीय भाषा में ''सुपरमून'' कहा जाता है। साल भर में 12 से 13 बार पूर्णिमा या नए चाँद दिखने की घटना होती है, जिसमें से मात्र तीन या चार को ही सुपरमून के रूप में वर्गीकृत किया जाता है।

उच्चतम बिंदु पर बुद्ध

27 फरवरी को बुद्ध ग्रह (Mercury) अधिकतम पूर्वी दीर्घकरण (Greatest Eastern Elongation) पर होगा। बुध ग्रह सूर्य से 18.1 डिग्री की सबसे बड़ी पूर्वी बढ़ाव पर पहुँचता है। बुध ग्रह को देखने का यह सबसे अच्छा समय है क्योंकि इस शाम के आकाश में क्षितिज के ऊपर अपने उच्चतम बिंदु पर होगा। सूर्यास्त के बाद पश्चिमी आकाश में बुद्ध ग्रह को नीचे देखा जा सकता है। बुध, सौरमंडल के आठ ग्रहों में सबसे छोटा और सूर्य से निकटतम ग्रह है। इसका परिक्रमण काल लगभग 88 दिन है। पृथ्वी से देखने पर, यह अपनी कक्षा के इर्द-गिर्द 116 दिवसों में घूमता नज़र आता है जो कि ग्रहों में सबसे तेज़ है। बुध को सूर्यास्त के बाद या सूर्योदय से ठीक पहले नग्न आंखो से देखा जा सकता है।

इतिहास में विज्ञान

1 फ़रवरी विज्ञान के इतिहास में महत्वपूर्ण है। इसी दिन वर्ष 1951 में, पहली चलयमान एक्स-रे तस्वीर का प्रदर्शन किया गया था। वर्ष 1895 में पहली बार जर्मनी के विल्हेल्म कॉनराड रोएंटगेन ने एक्स-रे मशीन बनाई और उन्हीं के नाम पर आज भी जर्मनी में एक्स-रे को रोएंटगेन बिल्ड यानि रोएंटगेन की तस्वीर कहा जाता है। वर्ष 1901 में जब नोबेल पुरस्कार की शुरुआत हुई, तो फिजिक्स का सबसे पहला नोबेल इसी आविष्कार को दिया गया। तब से अब तक बहुत बदली

गई है एक्स-रे मशीन। एक्स-किरण या एक्स रे एक प्रकार का विद्युत चुम्बकीय विकिरण है जिसकी तरंगदैर्ध्य 10 से 0.01 नैनोमीटर होती है। यह चिकित्सा में निदान के लिये सर्वाधिक प्रयोग की जाती है।

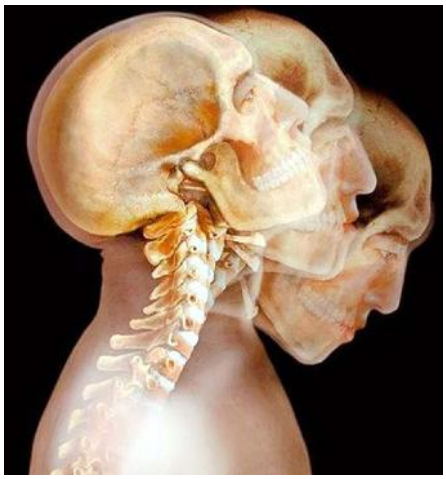

एक्स-रे के अन्य उपयोगों में एक्सरे सूक्ष्मदर्शी उल्लेखनीय है। एक्सरे के तरंगदैर्ध्य प्रकाश के तरंगदैर्ध्यो से सूक्ष्म होते हैं, अतः एक्सरे सूक्ष्मदर्शी को प्रकाश सूक्ष्मदर्शी से अधिक प्रभावशाली होना चाहिए। 1948 में एक्सरे को केंद्रित करने के कर्कपैट्रिक के प्रयत्न अंशतः सफल हुए। इस रीति से तथा अन्य रीतियों से प्रतिबिंब का आवर्धन करने के प्रयत्न अब प्रायोगिक अवस्था पार कर चुके हैं और अनेक निर्माताओं द्वारा निर्मित कई प्रकार के एक्सरे सूक्ष्मदर्शी सुलभ हैं।

एक्स-रे गति विश्लेषण वास्तव में एक्स-किरणों का उपयोग करके वस्तुओं की गति को ट्रैक करने के लिए उपयोग की जाने वाली एक तकनीक है। इसे एक्स-रे बीम के केंद्र में इमेज किया जाता है और एक इमेज इन्टेंसीफायर और उच्च गति वाले कैमरे का उपयोग करके गति रिकॉर्ड किया जाता है, जिससे उच्च गुणवत्ता वाले वीडियो प्राप्त किये जाते हैं। एक्स-रे की सेटिंग्स के आधार पर, यह तकनीक किसी ऑब्जेक्ट में विशिष्ट संरचनाओं की कल्पना कर सकती है, जैसे हड्डियों या उपास्थि। एक्स-रे गति विश्लेषण का उपयोग चाल विश्लेषण करने, संयुक्त गति का विश्लेषण करने, या मुलायम ऊतक द्वारा अस्पष्ट हड्डियों की गति को रिकॉर्ड करने के लिए किया जा सकता है। कंकाल गति को मापने की क्षमता कशेरुकी बायोमेकॅनिक्स, ऊर्जा विज्ञान और मोटर नियंत्रण को समझने के लिए बहुत महत्वपूर्ण है।

यही नहीं इसी दिन 1972 में, पहला वैज्ञानिक हस्तचलित कैलक्यूलेटर हेवलेट-पैकार्ड द्वारा पेश किया गया था, जिसका नाम 35 कुंजी पर एचपी-35 रखा गया था। यह पहला ऐसा हस्त चलित कैलक्यूलेटर था जो एक कीस्ट्रोक के साथ लॉगरिदमिक और त्रिकोणमितीय कार्यों को करने में सक्षम था। लाल एलईडी डिस्प्ले 10 अंक मंथिसा और 2 अंकों के एक्सपोनेंट तक वैज्ञानिक नोटेशन दे सकता है। फरवरी 1975 तक (जब मॉडल का उत्पादन बंद कर दिया गया था), 300,000 कैलक्यूलेटर बेचे गए थे। गणनाओं के लिए संख्याओं और कार्यों को रिवर्स पोलिश नोटेशन (आरपीएन) में दर्ज किया गया था, जिसने एन्टर कुंजी का उपयोग किया लेकिन किसी भी कोष्ठक या = कुंजी की आवश्यकता नहीं थी। यह रिचार्जेबल बैटरी पर चला करता था।

प्रकृति का भण्डार

पानी से संतृप्त भूभाग को नम भूमि या आर्द्रभूमि कहते हैं। कई भूभाग वर्षभर आर्द्र रहते हैं और अन्य कुछ विशेष मौसम में आर्द्र रहते हैं। आर्द्रभूमि हमारे पर्यावरण, पारिस्थितिकी और पृथ्वी की जैवविविधता के लिए बहुत महत्वपूर्ण है और जन्तुओं व वनस्पति को उपयुक्त वातावरण और आवास उपलब्ध कराती है। आर्द्रभमि क्षेत्र भू-जल स्तर को बढ़ाने और उसके भण्डारण के साथ जल को अपने में समेट कर बाढ़ की विभिषिका के ख़तरे को भी कम करते हैं। इसी आर्द्रभूमि के प्रति जागरूकता के लिए 2 फ़रवरी को सम्पूर्ण विश्व में विश्व आर्द्रभूमि दिवस (World Wetlands Day) मनाया जाता है। ज्ञात रहे दुनिया की आर्द्रभूमि के संरक्षण को लेकर इस दिन वर्ष 1971 में विश्व के विभिन्न देशों ने ईरान के रामसर में एक संधि पर हस्ताक्षर किये थे। नम भूमियों के महत्वपूर्ण कार्यों, मूल्यों और सेवाओं की जानकारी के आभाव में इनके तेजी से नष्ट होने की ओर विश्व का ध्यान आकर्षित करने के लिए रामसर अभिसमय तैयार किया गया था, जिससे जुड़ने वाली सरकारें अपनी आर्द्रभूमि की हानि और उसकी गिरावट के इतिहास को बदलने में मदद के लिए प्रतिबद्धता बनाने की इच्छा व्यक्त की गई। वर्तमान में भारत में 26 रामसर आर्द्रभूमियां अधिसूचित हैं और सरकार ने शुष्क भूमि को भी रामसर आर्द्रभूमियों के अन्तर्गत सम्मिलित किया है।

आर्द्रभूमियाँ पानी के संरक्षण का एक प्रमुख स्रोत है। ये आर्द्रभूमियाँ बाढ़ नियंत्रण के महत्त्वपूर्ण होती है। आर्द्रभूमि तलछट का काम करती है जिससे बाढ़ में कमी आती है। आर्द्रभूमि पानी को सहेजे रखती है बाढ़ के दौरान आर्द्रभूमियाँ पानी का स्तर कम बनाए रखने में सहायक होती हैं। समुद्री तटरेखा को स्थिर बनाए रखने में भी आर्द्रभूमियाँ का महत्त्वपूर्ण योगदान होता है। ये समुद्र द्वारा होने वाले कटाव से तटबन्ध की रक्षा करती हैं। आर्द्रभूमियाँ समुद्री तूफान और आँधी के प्रभाव को सहन करने की क्षमता रखती हैं। आर्द्रभूमियाँ जैव विविधता संरक्षण के लिये बहुत महत्त्वपूर्ण हैं और इनकी पारिस्थितिकी सुरक्षा में इन आर्द्रभूमियों की अहम भूमिका है। आर्द्रभूमियाँ बहुत से जीव-जन्तुओं का आश्रय प्रदान करती हैं। आर्द्रभूमियाँ अपने आस-पास बसी मानव बस्तियों के लिये जलावन लकड़ी, फल, वनस्पतियाँ, पौष्टिक चारा और जड़ी-बूटियों की स्रोत होती हैं।

अपने देश की बात करें तो यहां के अधिकांश वेटलैंड्स गंगा, कावेरी, कृष्णा, गोदावरी और ताप्ती जैसी प्रमुख नदी प्रणालियों से प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से जुड़े हुए हैं। एशियन वेटलैंड्स कोष (1989) के अनुसार वेटलैंड्स का देश के क्षेत्रफल, नदियों को छोड़कर, में 18.4 प्रतिशत हिस्सा है, जिसके 70 प्रतिशत भाग में धान की खेती होती है। भारत में वेटलैंड्स का अनुमानित क्षेत्रफल 4.1 मिलियन हेक्टेयर (सिंचित कृषि भूमि, नदियों और धाराओं को छोड़कर) है, जिसमें से 1.5 मिलियन हेक्टेयर प्राकृतिक और 2.6 मिलियन हेक्टेयर मानव निर्मित है। तटीय वेटलैंड्स का अनुमानित क्षेत्रफल 6750 वर्ग किलोमीटर है और इनमें मुख्यतः मैनग्रोव वनस्पति की बहुतायत है।

आर्द्र भूमियों में हिमालयन वेटलैंड्स, जिसमें लद्दाख एवं जंसकार पेंगांग सो, सो मोराड, चांटऊ, नूरीचान, चूशुल और हैनले मार्सेज, कश्मीर घाटी जिसमें डल, ऐंचर, बूलर, हेगाम, मालगाम, होकेसर और क्रांचू झीलें शामिल हैं, केन्द्रीय हिमालय में नैनीताल, भीमताल, नौकुचीताल और पूर्वी हिमालय में सिक्किम, असम, अरूणाचल प्रदेश, मेघालय, नगालैंड और मणिपुर के अनेक वेटलैंड्स ब्रह्मपुत्र और बराकघाटी के बील्स शामिल हैं। इंडो-गंगेटिक वेटलैंड्स देश के सबसे बड़ी वेटलैंड्स प्रणाली है, जो पश्चिम में सिंधु नदी से लेकर पूर्व में ब्रह्मपुत्र तक फैले हैं। इनमें हिमालय तराई और इंडो-गंगेटिक मैदान के वेटलैंड्स शामिल हैं। तटीय वेटलैंड्स में पश्चिम बंगाल, ओडिशा, आंध्र प्रदेश, तमिलनाडु, केरल, कर्नाटक, गोवा, महाराष्ट्र और गुजरात के 7500 किलोमीटर लंबे तट के साथ अंतरूज्वारीय क्षेत्र, वनस्पत्तियां और लैगून आते हैं। सुंदरबन, पश्चिम बंगाल, अंडमान निकोबार द्वीप समूह के मैंग्रोवन कच्छ की खाड़ी, मन्नार की खाड़ी, लक्षदीप और अंडमान निकोबार द्वीप समूह के अप-तटीय प्रवाल, भित्तियां भी इसमें आती हैं। दक्षिणी वेटलैंड्स में कुछ प्राकृतिक वेटलैंड्स आती हैं।

वर्ष 2011 में सरकार ने आर्द्रभूमि संरक्षण और प्रबंधन अधिनियम 2010 की अधिसूचना जारी की जिसके अन्तर्गत इन्हें छह वर्गों में विभक्त किया गया है, जो हैं-अंतर्राष्ट्रीय महत्व की आर्द्रभूमियां, राष्ट्रीय उद्यान और गरान जैसी पर्यावरणीय आर्द्रभूमियां, यूनेस्को की विश्व धरोहर सूची में सम्मिलित आर्द्रभूमियां, समुद्रतल से 25000 मीटर से कम ऊंचाई की ऐसी आर्द्रभूमियां जो 500 हेक्टेयर से अधिक क्षेत्रफल धेरती हों, समुद्रतल से 25000 मीटर से अधिक ऊँचाई किन्तु पांच हेक्टेयर से अधिक क्षेत्रफल और ऐसे आर्द्रभूमियां जिनकी पहचान प्राधिकरण ने की हो। भारत सरकार ने वर्ष 1986 के दौरान संबंधित राज्य सरकारों के साथ सहयोग से राष्ट्रीय वेटलैंड संरक्षण कार्यक्रम शुरू किया था। इस कार्यक्रम के अंतर्गत अभी तक पर्यावरण एवं वन मंत्रालय ने ११५ वेटलैंड्स की पहचान की गई है, जहां संरक्षण और प्रबंधन पहल की जरूरत है। इस योजना का उद्देश्य देश में वेटलैंड्स के संरक्षण और उनका बुद्धिमतापूर्ण उपयोग करना है, ताकि उनमें और गिरावट आने से रोका जा सके।

रामपत्री और नीम से रिवॉल्वर तक

कैंसर रोगों का एक वर्ग है जिसमें कोशिकाओं का एक समूह सामान्य सीमा से अधिक विभाजन कर अनियंत्रित वृद्धि दर्शाता है। यह रोग आक्रमण रूप से अपने आस-पास के उतकों का विनाश कर फैलता है और कभी-कभी अपररूपांतरण अथवा मेटास्टैसिस रूप से लसिका या रक्त के माध्यम से शरीर के अन्य भागों में फैल जाता है। सामान्यता कैंसर

के तीन दुर्दम लक्षण होते हैं, जिन्हें अबुर्द (ट्यूमर) से विभेदित करते हैं। अधिकांश कैंसर एक गाँठ या ट्यूमर बनाते हैं, लेकिन कुछ, जैसे रक्त कैंसर या श्वेतरक्तता (Leukemia) में गाँठ नहीं बनाती। कैंसर के प्रति जागरूकता के लिए 4 फ़रवरी को विश्व कर्कट अर्थात कैंसर दिवस (World Cancer Day) मनाया जाता है। 1933 में अंतर्राष्ट्रीय कैंसर नियंत्रण संघ ने स्विट्जरलैंड में जिनेवा में पहली बार विश्व कैंसर दिवस मनाया।

यदि कैंसर के कारणों पर नज़र डालें तो पाएंगे कि लगभग सभी कैसर रूपांतरित कोशिकाओं के आनुवंशिक पदार्थ में असामान्यताओं के कारण होते हैं, जो कार्सिनोजन या कैंसरजन के कारण हो सकती हैं जैसे तम्बाकू धूम्रपान, विकिरण, रसायन आदि कारक। कैंसर को उत्पन्न करने वाली अन्य आनुवंशिक असामान्यताएं कभी-कभी डीएनए प्रतिकृति में त्रुटि के कारण हो सकती हैं या आनुवंशिक रूप से प्राप्त हो सकती हैं। कैंसर जिनोम के अध्ययन के इस बड़े प्रयास में शोधकर्ताओं की अंतर्राष्ट्रीय टीम कैंसर को जन्म देने वाले बदलावों को समझने की कोशिश कर रही है। कैंसर के बहुत सारे रूप हैं लेकिन उनके कारणों का पता अब भी नहीं है, वैज्ञानिक मानते हैं कि अल्ट्रा वायलेट रेडियेशन आदि डीएनए में बदलाव पैदा कर सकते हैं जो कैंसर का जोखिम बढ़ाता है।

भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र के वैज्ञानिक मानव जीवन की रक्षा के लिए कैंसर की दवा बनाने के काम में जुटे हैं, इस कड़ी में उन्होंने रामपत्री पौधे (वनस्पति वैज्ञानिक नाम मिरिस्टिका मालाबारिका) से कैंसर की एक नई दवा बनाई है जो दुनिया भर में कैंसर रोगियों के जीवन की रक्षा करने में मददगार हो सकती है। इससे पहले बार्क कैंसर के कोबाल्ट थेरैपी उपचार के लिए भाभाट्रोन नाम की मशीन भी बना चुका है जिसका इस्तेमाल आज दुनिया के कई देशों में हो रहा है। बार्क द्वारा रामपत्री नामक पौधे के अणुओं से बनाई गई कैंसर की दवा कैंसर रोग के उपचार में क्रांति लाने में सहायक हो सकती है। रामपत्री यानी मिरिस्टिका मालाबारिका को पुलाव और बिरयानी में सुगंध के लिए मसाले के रूप में इस्तेमाल किया जाता है। इससे बनाई गई कैंसर की दवा का परीक्षण चूहों पर किया जा चुका है। यह दवा फेफड़े के कैंसर और बच्चों में होने वाले दुर्लभ प्रकार के कैंसर न्यूरोब्लास्टोमा के उपचार में काफी असरदार साबित हो सकती है। न्यूरोब्लास्टोमा एक ऐसा कैंसर है जिसमें वृक्क ग्रंथियों, गर्दन, सीने और रीढ़ की नर्व कोशिकाओं में कैंसर कोशिकाएं बढ़ने लगती हैं।

हैदराबाद स्थित राष्ट्रीय औषधीय शिक्षा एवं अनुसंधान संस्थान के वैज्ञानिकों ने दावा किया है कि नीम की पत्तियों और फूल से मिलने वाले रासायनिक यौगिक निमबोलिड स्तन (ब्रेस्ट) कैंसर के इलाज में प्रभावी रूप से कारगर हो सकता है। वैज्ञानिक चंद्ररैयाह गोडुगू ने कहा कि वे आगे की रिसर्च और क्लीनिकल टेस्ट के लिए धनराशि के वास्ते जैवप्रौद्योगिकी विभाग, आयुष और विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी जैसी विभिन्न एजेंसियों से सम्पर्क कर रहे हैं। उन्होंने कहा कि हमारे संस्थान के वैज्ञानिकों ने पाया कि निमबोलिड ब्रेस्ट कैंसर वृद्धि को रोकता है। क्लीनिकल टेस्ट में सहायता के लिए आगे की स्टडी की जाएगी। वैज्ञानिकों ने कहा कि हो सकता है कि यह कैंसर की सबसे सस्ती दवा साबित हो क्योंकि नीम के पेड़ भारत में काफी मात्रा में पाए जाते हैं।

लंदन के इंस्टिट्यूट ऑफ कैंसर रिसर्च (आईसीआर) और यूनिवर्सिटी ऑफ एडिनबर्ग की टीम ने मिलकर एक नई तकनीक की खोज की है-रिवॉल्वर (रिपीटेड इवोल्यूशन ऑफ कैंसर)। कैंसर के दौरान डीएनए में आए बदलावों के पैटर्न को ये तकनीक रिकॉर्ड करती है और इस जानकारी को भविष्य में होने वाले अनुवांशिक बदलावों को समझने के लिए इस्तेमाल करती है। शोधकर्ताओं का कहना है कि ट्यूमर में लगातार आते बदलाव कैंसर के इलाज में एक बड़ी चुनौती थी। एक कैंसर ड्रग रेसिस्टेंट हो सकता है यानी कैंसर पर दवाई का असर बंद हो जाता है। इस रिसर्च टीम के प्रमुख डॉक्टर एंड्रिया सोट्टोरिवा ने बताया कि इस तकनीक से उम्मीद है कि डॉक्टर कैंसर के ट्रंप कार्ड को हटाने में कामयाब हो जाएंगे यानी अब तक कैंसर किस तरह बढ़ेगा ये मालूम करना मुश्किल था। उन्होंने कहा कि इस तकनीक से भविष्य में थोड़ा झांकने में मदद मिलेगी और कैंसर की शुरुआती स्टेज पर ही हस्तक्षेप कर सकते हैं। पता लगा सकते हैं कि कैंसर में आगे क्या होने वाला है। इंस्टीट्यूट ऑफ कैंसर रिसर्च के प्रोफेसर पॉल वर्कमैन ने कहा कि कैंसर का विकास हमारे लिए इसके इलाज में सबसे बड़ी चुनौती थी। उन्होंने बताया कि अगर हम पहले ही पता लगा सकें कि ट्यूमर कैसे बढ़ेगा तो ड्रग रेसिस्टेंस होने से पहले ही हम इलाज में जरूरी बदलाव कर सकते हैं यानी कैंसर से एक कदम आगे रहे सकते हैं। आज हम विज्ञान से ना सिर्फ़ लोगों को अपनी बीमारियां ठीक करने मदद मिल रही है बल्कि वक्त से पहले ही बीमारी की रोकथाम में भी सहायता हो रही है। ऐसी ही एक शोध हुआ है जिसमें आठ तरह के कैंसर की पहचान आसानी से हो सकेगी। इस एक नए रक्त परीक्षण से आठ तरह के सामान्य कैंसर के शरीर में फैलने और मरीजों के जीवन को जोखिम होने से पहले ही शुरुआती अवस्था में ही पहचान हो सकेगी, जिसे ऑस्ट्रेलिया के शोधकर्ताओं ने विकसित किया है। ऑस्ट्रेलिया के वाल्टर एंड एलिजा हॉल इंस्टीट्यूट ऑफ मेडिकल रिसर्च ने दावा किया है कि नया परीक्षण अंडाशय, लीवर, पेट, पैंक्रियाज, ऑसोफोगस, आंत, फेफड़ों और स्तन को प्रभावित करने वाले कैंसर का शुरुआत में ही पता लगाने में सक्षम होगा। संस्थान के एसोसिएट प्रोफेसर जेयने टाई ने कहा कि इस परीक्षण में कई ट्यूमर प्रकारों के लिए वन-स्टॉप परीक्षण बनने की संभावना है, जिसे वृहद पैमाने पर स्वीकार किया जाना चाहिए। कैंसर हो जाने पर मरीज के ज़िंदा बचने की दर सीधे इससे जुड़ी है कि परीक्षण के दौरान मरीज का कैंसर किस अवस्था में है। जितनी शुरुआती अवस्था में कैंसर का पता चलता है, मरीज़ के बचने की दर भी उतनी ही अधिक होती है। इसका मतलब यह है कि वर्तमान में ऐसे रक्त परीक्षण की अत्यंत ज़रूरत है, जो शुरुआती अवस्था में ही कैंसर की सटीकता से पता लगा सकें। नए रक्त परीक्षण के बारे में साइंस जर्नल में जानकारी प्रकाशित हुई है।

भावी विकास का नक्शा

जिस प्रक्रिया द्वारा किसी जनसंख्या में कोई जैविक गुण कम या अधिक हो जाता है उसे प्राकृतिक वरण या प्राकृतिक चयन कहते हैं। यह एक धीमी गति से क्रमशः होने वाली अनयादृच्छिक (नॉन-रैण्डम) प्रक्रिया है। प्राकृतिक वरण ही क्रम-विकास की प्रमुख कार्यविधि है। जिसकी नींव चार्ल्स डार्विन ने रखी थी। प्राकृतिक वरण तंत्र (Natural selection system) विशेष रूप से इसलिए महत्वपूर्ण है क्योंकि यह एक प्रजाति (Species) को पर्यावरण के लिए अनुकूल बनने मे सहायता करता है। प्राकृतिक चयन का सिद्धांत इसकी व्याख्या कर सकता है कि पर्यावरण किस प्रकार प्रजातियों और जनसंख्या के विकास को प्रभावित करता है ताकि वो सबसे उपयुक्त लक्षणों का चयन कर सकें। यही विकास के सिद्धांत का मूलभूत पहलू है। प्राकृतिक चयन का अर्थ उन गुणों से है जो किसी प्रजाति को बचे रहने और प्रजनन मे सहायता करते हैं और इसकी आवृत्ति पीढ़ी दर पीढ़ी बढ़ती रहती है। 12 फ़रवरी को डार्विन दिवस मनाया जाता है। दुनिया भर में इस दिवस को चार्ल्स डार्विन के जन्मदिन (12 .02.1809) के रूप में मनाया जाता है, जिसका उद्देश्य विज्ञान में डार्विन के योगदान स्पष्ट करने और सामान्य तौर पर विज्ञान को बढ़ावा देने के लिए किया जाता है।

आनुवंशिक कोडधारी डीएनए की ऐंठनदार सीढ़ी जैसी संरचना होती है, जिसे डबल हेलिक्स संरचना कहते हैं। इसके सहखोजी जेम्स वॉटसन मानते हैं कि आनुवंशिकी भी हर कदम पर डार्विन की ही पुष्टि करती लगती है। जेम्स वॉटसन और फ्रांसिस क्रिक ने वर्ष 1953 मे एक ऐसी खोज की, जिससे चार्ल्स डार्विन द्वारा प्रतिपादित अधिकतर सिद्धांतों की पुष्टि होती है। उन्होंने जीवधारियों के भावी विकास के उस नक्शे को

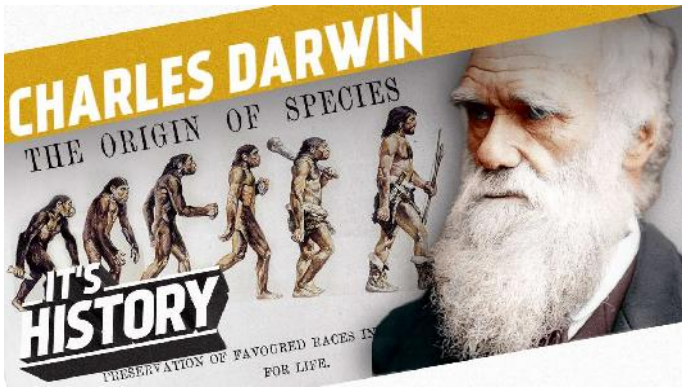

पढ़ने का रासायनिक कोड जान लिया था, जो हर जीवधारी अपनी हर कोशिका में लिये घूमता है। यह नक्शा केवल चार अक्षरों वाले डीएनए कोड के रूप में होता है। अपनी खोज के लिए वर्ष 1962 में दोनो को चिकित्सा विज्ञान का नोबेल पुरस्कार मिला। एडवर्ड ऑसबर्न विल्सन आजकल के सबसे जानेमाने विकासवादी वैज्ञानिकों में गिने जाते हैं और वे भी डार्विन आदर करते हुए कहते हैं कि हर युग का अपना एक मील का पत्थर होता है। पिछले 200 वर्षों के आधुनिक जीवविज्ञान का मेरी दृष्टि में मील का पत्थर है 1859, जब जैविक प्रजातियों की उत्पत्ति के बारे में डार्विन की पुस्तक प्रकाशित हुई थी। दूसरा मील का पत्थर है 1953, जब डीएनए की बनावट के बारे में वॉटसन और क्रिक की खोज प्रकाशित हुई।

प्राकृतिक विज्ञानी चार्ल्स डार्विन ने क्रमविकास (Evolution) के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया था। देखा जाए तो आज जो हम सजीव चीजें देखते हैं, डार्विन की उत्पत्ति तथा विविधता को समझने के लिए उनका विकास का सिद्धान्त सर्वश्रेष्ठ माध्यम बन चुका है। उनकी सर्वाधिक प्रसिद्ध पुस्तक जीवजाति का उद्भव (Origin of Species) प्रजातियों की उत्पत्ति सामान्य पाठकों पर केंद्रित थी। डार्विन के विकास के सिद्धान्त से यह समझने में मदद मिलती है कि किस प्रकार विभिन्न प्रजातियाँ एक दूसरे के साथ जुड़ी हुई हैं। स्वस्थतम की उत्तरजीविता एक वाक्यांश है जिसका इस्तेमाल आम तौर पर इसके प्रथम दो प्रस्तावकों ब्रिटिश दार्शनिक हरबर्ट स्पेंसर और चार्ल्स डार्विन, द्वारा इस्तेमाल किए गए सन्दर्भ के अलावा अन्य सन्दर्भों में भी किया जाता है। हरबर्ट स्पेंसर ने सबसे पहले इस वाक्यांश का इस्तेमाल चार्ल्स डार्विन की ''ऑन द ऑरिजिन ऑफ स्पीशीज़'' को पढ़ने के बाद अपनी प्रिंसिपल्स ऑफ बायोलॉजी (1864) में किया था, जिसमें उन्होंने अपने आर्थिक सिद्धांतों और डार्विन के जैविक सिद्धांतों के बीच समानताएं व्यक्त करते हुए लिखा कि यह स्वस्थतम की उत्तरजीविता है। डार्विन ने स्पेंसर के नए वाक्यांश ''स्वस्थतम की उत्तरजीविता'' का इस्तेमाल सबसे पहले वर्ष 1869 में प्रकाशित किए गए ''ऑन द ऑरिजिन ऑफ स्पीशीज़'' के पांचवें संस्करण में ''प्राकृतिक चयन'' के एक समानार्थी शब्द के रूप में किया था। डार्विन ने इसका मतलब ''तत्काल, स्थानीय पर्यावरण के लिए बेहतर अनुकूलित'' के लिए एक रूपक के रूप में किया था।

रेडियो की प्रासंगिकता

रेडियो हमारे जीवन में मनोरंजन का एक अहम साधन है। आवाज की दुनिया में रेडिया नायक बनकर उभरा और आज भी अपनी भूमिका को बरकरार रखे हुए है। संचार के माध्यम भले ही बदले हों लेकिन रेडियो ने अपनी प्रासंगिकता को बनाए रखा है। 13 फ़रवरी को विश्व रेडियो दिवस के रूप में मनाया जाता है। रेडियो दिवस एक ऐसा अवसर है कि हम रेडियो के द्वारा हमारे जीवन में लाए गए बदलावों को याद करें। सामाजिक परिवर्तनों में भी रेडिया अहम रहा है। कई देशों में रेडियों बदलाव के पड़ावों का साक्षी भी रहा है। वर्ष 1923 में रेडियो क्लब ऑफ बॉम्बे (बॉम्बे की मंडली) से प्रसारण शुरू हुआ था। ऑल इंडिया रेडियो और फिर आकाशवाणी के ज़रिये रेडियो ने देश में अपनी महत्वपूर्ण जगह बनाई है।

यह दिवस रेडियो के अनूठी शक्ति को याद रखने और इसे दुनिया के हर कोने लोकप्रिय बनाने के लिए मूल रूप से स्पेन ऑफ किंगडम द्वारा प्रस्तावित होने के बाद यह यूनेस्को के 36 वें जनरल सम्मेलन में 3 नवंबर, 2011 को घोषित किया गया था। वर्ष 2012 में विश्व रेडियो दिवस के पहले संस्करण के सम्मान में, लाइफलाइन एनर्जी, फ्रंटलाइन एसएमएस, एसओएस रेडियो और एम्पावरहाउस ने लंदन में एक सेमिनार का आयोजन किया। इतालडियो और इंजीनियरिंग और दूरसंचार संकाय द्वारा इस आयोजन का आयोजन किया गया था। 20 वीं शताब्दी के शुरुआती वर्षों में मार्कोनी द्वारा निर्मित इंटरकांटिनेंटल रेडियो स्टेशन की मेजबानी करने वाले पिसा को पहली इटैलियन शहर के रूप में चुना गया था।

रेडियो के इतिहास पर नज़र डालने पर पता चलता है कि रेडियो में विज्ञापन की शुरुआत वर्ष 1923 में हुई। इसके बाद ब्रिटेन में बीबीसी और अमेरीका में सीबीएस और एनबीसी जैसे सरकारी रेडियो स्टेशनों की शुरुआत हुई। अमेरीका के पिट्सबर्ग में वर्ष 1920 में पहला रेडियो स्टेशन (केंद्र) खोला गया। भारत में वर्ष 1936 में भारत में 'इम्पेरियल रेडियो ऑफ इंडिया' की शुरुआत हुई जो आजादी के बाद ऑल इंडिया रेडियो या आकाशवाणी बन गया। वर्ष 1947 में आकाशवाणी के पास छह रेडियो स्टेशन थे और पहुँच ग्यारह प्रतिशत लोगों तक ही थी, लेकिन आज देश की अधिकतम आबादी तक रेडियो की पहुँच हैं। आज देश में एफएम रेडिया धूम मचा रहा है। भारत में वर्ष 2017 तक डिजिटल रेडियो का लक्ष्य तय किया गया था। रेडियो प्रसारण की बात की जाए तो इस दिशा में वैज्ञानिक मारकोनी के योगदान को भुलाया नहीं जा सकता, जिन्होंने वर्ष 1894 में पहला पूर्ण टेलीग्राफी सिस्टम बनाया, जिसे रेडियो कहा गया। रेडिया का विज्ञान प्रसार के साथ सेना एवं नौसेना में भी सफलतापूर्वक इस्तेमाल किया गया।

हमारे वैज्ञानिक रमन

28 फरवरी, 1928 को सर सी.वी.रमन ने अपनी खोज रमन प्रभाव (Raman effect) की घोषणा की थी। इसी खोज (प्रकाश के

प्रकीर्णन पर उत्कृष्ट कार्य के लिये) उन्हें वर्ष 1930 में भौतिकी का प्रतिष्ठित नोबेल पुरस्कार दिया गया। आज उनका आविष्कार उनके ही नाम, रामन प्रभाव के नाम से जाना जाता है। वर्ष 1954 में उन्हें भारत सरकार द्वारा भारत रत्न की उपाधि से विभूषित किया गया और वर्ष 1957 में लेनिन शान्ति पुरस्कार से नवाज़ा गया था। इससे पूर्व आप वर्ष 1924 में अनुसंधानों के लिए रॉयल सोसायटी, लंदन के फैलो भी बनाए गए। उनकी इसी खोज दिवस (28 फ़रवरी) को राष्ट्रीय विज्ञान दिवस के रूप में मनाया जाता है। राष्ट्रीय विज्ञान दिवस का मूल उद्देश्य विद्यार्थियों को विज्ञान के प्रति आकर्षित व प्रेरित करना तथा जनसाधारण को विज्ञान एवं वैज्ञानिक उपलब्धियों के प्रति सजग बनाना है। विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी से होने वाले लाभों के प्रति समाज में जागरूकता लाने और वैज्ञानिक सोच पैदा करने के उद्देश्य से राष्ट्रीय विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संचार परिषद (एनसीएसटीसी) तथा विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी मंत्रालय के तत्वावधान में हर साल 28 फरवरी को राष्ट्रीय विज्ञान दिवस मनाया जाता है।

रमन प्रभाव वह है जिसमें एकल तरंग-दैर्ध्य प्रकाश (मोनोक्रोमेटिक) किरणें, जब किसी पारदर्शक माध्यम ठोस, द्रव या गैस से गुजरती है तब इसकी छितराई किरणों का अध्ययन करने पर पता चला कि मूल प्रकाश की किरणों के अलावा स्थिर अंतर पर बहुत कमजोर तीव्रता की किरणें भी उपस्थित होती हैं। इन्हीं किरणों को रमन-किरण भी कहते हैं। यह किरणें माध्यम के कणों के कंपन एवं घूर्णन की वजह से मूल प्रकाश की किरणों में ऊर्जा में लाभ या हानि के होने से उत्पन्न होती हैं। रमन प्रभाव का अनुसंधान की अन्य शाखाओं, औषधि विज्ञान, जीव विज्ञान, भौतिक विज्ञान, खगोल विज्ञान तथा दूरसंचार के क्षेत्र में भी बहुत महत्व है।

सर सीवी रमन और रमन प्रभाव की चर्चा करने से पहले आइए उनके कार्यों पर डालते हैं एक नज़र। सर सीवी रमन कलकत्ता विश्वविद्यालय में वर्ष 1917 में भौतिकी के प्राध्यापक का पद बना तो वहाँ के कुलपति आशुतोष मुखर्जी ने उसे स्वीकार करने के लिए आपको आमंत्रित किया। सर सीवी रमन ने उनका निमंत्रण स्वीकार करके उच्च सरकारी पद से त्याग-पत्र दे दिया। उन्होंने कलकत्ता विश्वविद्यालय में कुछ वर्षों में वस्तुओं में प्रकाश के चलने का अध्ययन किया। उन्होंने अध्ययन किया कि किरणों का पूर्ण समूह बिल्कुल सीधा नहीं चलता है और उसका कुछ भाग अपनी राह बदलकर बिखर जाता है। वर्ष 1921 में सर सीवी रमन विश्वविद्यालयों की कांग्रेस में प्रतिनिधि बन गए आक्सफोर्ड गए। वहां जब अन्य प्रतिनिधि लंदन में दर्शनीय वस्तुओं को देख अपना मनोरंजन कर रहे थे, वह सेंट पाल के गिरजाघर में उसके फुसफुसाते गलियारों का रहस्य समझने में लगे हुए थे। जब वह जलयान से स्वदेश लौट रहे थे, तो आपने भूमध्य सागर के जल में उसका अनोखा नीला व दूधियापन देखा। कलकत्ता विश्वविद्यालय पहुँच कर आपने पार्थिव वस्तुओं में प्रकाश के बिखरने का नियमित अध्ययन शुरु कर दिया। इसके माध्यम से लगभग सात वर्ष उपरांत, आप अपनी उस खोज पर पहुँचें, जो रामन प्रभाव के नाम से विख्यात है। उनका ध्यान वर्ष 1927 में इस बात पर गया कि जब एक्स किरणें प्रकीर्ण होती हैं, तो उनकी तरंग लम्बाइयां बदल जाती हैं। तब प्रश्न उठा कि साधारण प्रकाश में भी ऐसा क्यों नहीं होना चाहिए?

सर सीवी रमन ने पारद आर्क के प्रकाश का स्पेक्ट्रम स्पेक्ट्रोस्कोप में निर्मित किया। इन दोनों के मध्य विभिन्न प्रकार के रासायनिक पदार्थ रखे तथा पारद आर्क के प्रकाश को उनमें से गुजार कर स्पेक्ट्रम बनाए। आपने देखा कि हर एक स्पेक्ट्रम में अन्तर पड़ता है। हर एक पदार्थ अपनी-अपनी प्रकार का अन्तर डालता है। तब श्रेष्ठ स्पेक्ट्रम चित्र तैयार किए गए, उन्हें मापकर तथा गणितीय गणना करके उनकी सैद्धान्तिक व्याख्या की। उन्होंने प्रमाणित किया गया कि यह अन्तर पारद प्रकाश की तरगं लम्बाइयों में परिवर्तित होने के कारण पड़ता है। इस प्रकार रमन प्रभाव का उद्भव सम्भव हुआ। उन्होंने इस खोज की घोषणा 29 फरवरी, 1928 को की थी, जिसे आज हम राष्ट्रीय विज्ञान दिवस के रूप में मनाते हैं।

अतः रमन प्रभाव से स्पष्ट हुआ कि जब कोई एकवर्णी प्रकाश द्रवों और ठोसों से होकर गुजरता है तो उसमें आपतित प्रकाश के साथ अत्यल्प तीव्रता का कुछ अन्य वर्णों का प्रकाश देखने में आता है। यह खोज सर सीवी रामन ने अपनी खोज उत्कृष्ट यंत्रों के आभावों में तब की थी जब काफी पुराने किस्म के यंत्र मौजूद थे। आज रमन प्रभाव ने विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी को बदल दिया है और हर क्षेत्र के वैज्ञानिक रामन प्रभाव के माध्यम से महत्वपूर्ण वैज्ञानिक प्रयोगों को अंजाम दे रहे हैं। इसके चलते बैक्टीरिया, रासायनिक प्रदूषण और विस्फोटक वस्तुओं आदि का पता आसानी से चल जाता है। आजकल अमेरिकी वैज्ञानिकों ने इसे सिलिकॉन पर भी इस्तेमाल करना आरंभ कर दिया है। ज्ञात रहे ग्लास की अपेक्षा सिलिकॉन पर रामन प्रभाव दस हज़ार गुना ज़्यादा तीव्रता से काम करता है। इससे आर्थिक लाभ तो होता ही है साथ में समय की भी काफी बचत हो सकती है। वैज्ञानिक विकास के साथ आने वाले समय में रमन प्रभाव के और भी उपयोग दृष्टिगोचर हो सकते हैं।

research.rog@rediffmail.com

एक चेहरा समूचा

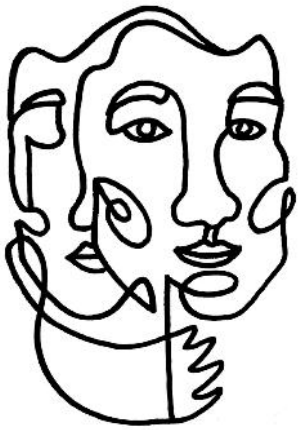

नरेश सक्सेना

पेशे से इंजीनियर रहे नरेश सक्सेना हिन्दी के ख्यातिलब्ध और महत्वपूर्ण कवि हैं। आपने जबलपुर में बी.ई. (आनर्स) और कलकत्ता के ऑल इंडिया इंस्टीट्यूट ऑफ हाइज़ीन से एमई-पीएच का प्रशिक्षण प्राप्त किया। उत्तर प्रदेश जल निगम में उपप्रबंधक, टेक्नॉलॉजी मिशन के कार्यकारी निदेशक और त्रिपोली (लीबिया) में वरिष्ठ सलाहकार के रूप में काम करने के बाद सरकारी सेवा से निवृत्त हुये। फिलहाल बुंदेलखंड ग्रामीण पेयजल एवं पर्यावरण उन्नयन योजना से संबद्ध हैं। आपको पहल सम्मान, ऋतुराज सम्मान, लाईफटाइम एचीवमेंट अवार्ड सहित कई महत्वपूर्ण सम्मानों से सम्मानित किया गया। आप लखनऊ में रहते हैं।

चूने को देखूँ या रेत
या पत्थरों का ढेर
दीवारें देखूँ या छत या लकड़ी का दरवाजा
एक चेहरा दिखाई देता है।

जंगलों को देखूँ या नदी या पहाड़
चट्टानों को देखता रह जाता हूँ गौर से
देखो, वे खुद कितने गौर से देख रही हैं मुझे
कहती हुई हमें पता था
एक न एक दिन तुम जरूर आओगे
और आँखों में आँखें डालकर देखोगे
अब देखो उसे
नाक गायब है जिसकी और जबड़ा पूरा झूल गया है
पीछे से झाँक रहा है जो अंधी आँखों वाला
जिसकी टूटी है कमर
दरक गया है जिसका माथा
और खून बस अब बहने ही वाला है
और उनके ऊपर आकाश में
अनगिनत पानीदार चेहरे वे किसके
अभी अभी पत्थर
अभी अभी पानी
अभी अभी जानवर
अभी अभी आदमी

वे कटे हुए ओंठ
टूटी हुई नाक और फूटी हुई आँखें
पीठ से चिपकी चली आती हैं
होटल के कमरे तक
और प्रकट होने लगती हैं फर्श में, छत में,
दीवारों-दरवाजों में
माँगते हुए अपना चेहरा समूचा
कहाँ तक बचूँ इनसे
जैसे कोई ताकत अदृश्य खींचकर
ला खड़ा करती है सुबह-सुबह
शीशे के सामने

•

मनुष्य शक्ति

कितना कोयला होगा मेरी देह में
कितनी कैलोरी कितने वाट कितने जूल
कितनी अश्वशक्ति
(मैं इसे मनुष्यशक्ति कहूँगा)
कितनी भी ठंडक हो बर्फ़ हो
अँधेरा हो
एक आदमी को गर्माने भर के लिए एक बार
तो होगा ही काफ़ी
अब एक लपट की तलाश है
कोयले के इस छोटे-से गोदाम के लिए।

•

गोल पत्थर

नोकें टूटी होंगी एक-एक कर
तीखापन ख़त्म हुआ होगा
किस-किस से टकराया होगा
कितनी-कितनी बार
पूरी तरह गोल हो जाने से पहले

जब किसी भक्त ने पूजा या बच्चे ने खेल के लिए
चुन लिया होगा
तो खुश हुआ होगा
कि सदमे में डूब गया होगा

एक छोटी-सी नोक ही
बचाकर रख ली होती
किसी आततायी के माथे पर वार के लिए।

•

मुझे मेरे भीतर छुपी रोशनी दिखाओ

सूर्यास्त के बाद भी
बहना बंद नहीं करतीं नदियाँ
बल्कि और तेजी से, गहन अंधकार में
छलाँगें लगातीं काई लगी चिकनी चट्टानों पर
खतरनाक ऊँचाइयों से
कूद पड़तीं अंधी गहरी खाइयों में
झाड़ियों दरारों और जंगलों के आर पार

लगता है
उनके भीतर छुपी कोई रोशनी
जरूर उनके साथ साथ चलती है।

रामगाड में
टरबाइन के पंखों से जूझकर हमने उसे
प्रकट होते देखा और उसी रोशनी में काम करती
नौ बरस की राजी के लिए कई ‘‘शौट’’

पहले सकुचाई, फिर पूछने लगी राजी
यह हमारी नदी की रोशनी है?
हाँ
पानी घट जाए तो रोशनी भी घट जाएगी
हाँ
गिलास के पानी में भी रोशनी है
नहीं, बहते हुए पानी की ताकत में है रोशनी
जिस ताकत से तुम करती हो काम
उसमें है रोशनी।
मेरे भीतर रोशनी है, साबजी?
हाँ
कितनी? सूरज जितनी मैंने कहा
नहीं, झूठ!
चाँद जितनी
नहीं, राजी बोली
अच्छा दिये जितनी मैंने कहा
दिये जितनी क्यों? पूछा राजी ने

फिल्म के दृश्य में
नैनीताल की पहाड़ियों से टकराता
गूँजता है राज़ी का प्रश्न

‘तो दिखाओ मुझे मेरे भीतर की रोशनी’

दुनिया की करोड़ों करोड़ राजियाँ
और नदियाँ कहती हुई एक साथ
दिखाओ मुझे मेरे भीतर की छुपी हुई रोशनी
सूरज जितनी नहीं
चाँद जितनी नहीं
सिर्फ एक बल्ब जितनी रोशनी

●

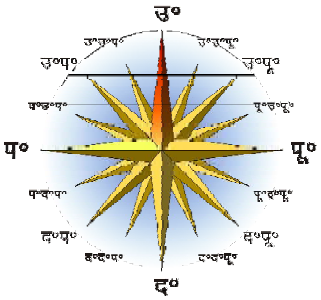

दिशाएँ

पच्छिम की तरफ़ चलता हूँ तो
पच्छिम की चीज़ें पूर्व में खिसकने लगती हैं
देखता हूँ कि
चलना शुरू करते ही
भूगोल से मुक्त होने लगती हैं दिशाएँ
और इतिहास में जाने को उत्सुक हो उठती हैं

उत्तर के उत्तर में ही जाते ही
दक्षिण में बदल जाता है उत्तर
हालाँकि बर्फ़ वहाँ भी उतनी ही जमी मिलती है
किसी को अजब नहीं लगता
कि दिशाएँ हैं चार और सूरज सिर्फ़ एक

चार सूरज होते
तो हर दिशा पूर्व होती
हर दिशा पच्छिम
हर दिशा उत्तर और हर दिशा दक्षिण

हम एक दिशा में चलते हुए चारों दिशाओं में जा सकते
चार सूरजों की सुबह होती
चार सूरजों की शाम
रात होती गहरी
चार सूरजों के न होने की

लेकिन तब सूरजों की होती परिक्रमा
या पृथ्वी की
ऋतुओं का क्या होता
क्या होता चार सूरजों के पार पृथ्वियों के स्वप्न का
रक्त के लोह कणों के लिए
उत्तर दक्षिण चुंबकत्व की दिशाएँ तब होतीं या न होतीं

घर के बीचोंबीच खड़ा होकर देखता हूँ
कि चारों दिशाओं में है मेरा घर
पूरब में सोने का कमरा है
उसके दक्षिण में पलँग है
जिसकी पश्चिमी पाटी के किनारे पड़कर पाता हूँ
कि उत्तर में सिर है
दक्षिण में पाँव
एक हाथ पूरब
तो एक हाथ पच्छिम
दक्षिण में होता है दर्द
तो उत्तर में होता है रतजगा
एक दिन नहीं होती कोई दिशा
एक दूसरे को बाँहों में भरे दो दिशाएँ
अनंत दूरी पर पीठ किए दिखती हैं

आज खोजता हूँ दिशा
अपने अँधेरों को स्पर्शों से आलोकित करने की
साथ-साथ भीगने की
बेसली नदी की सोन रेखा की
गोहद के छोटे से आँगन में झरती हुई नीम की पत्तियों की
कोई दिशा नहीं है

दोस्तो हम सबकी एक साथ एक दिशा
होनी ज़रूर चाहिए
लेकिन याद रखना चाहिए
कि हर दिशा में होती हैं चार दिशाएँ
और पाँचवीं की गुंजाइश हरदम बनी रहती है।

●

रबिन्द्रनाथ टैगोर विश्वविद्यालय में भारतीय विश्वविद्यालय संघ की वाइस चांसलर मीट का शुभारंभ

विगत दिनों रबिन्द्रनाथ टैगोर विश्वविद्यालय में भारतीय विश्वविद्यालय संघ के सेंट्रल जोन के कुलपतियों की बैठक का आयोजन किया गया। दो दिवसीय कार्यक्रम की थीम ''बेंच मार्किंग एक्सीलेंस इन हायर एज्युकेशन-रैंकिग, रेटिंग एण्ड रिसर्च'' पर मंथन से निश्चित ही भारतीय उच्च शिक्षा को एक नई दिशा प्रदान होगी। यह बात बतौर मुख्य अतिथि श्री जीतू पटवारी माननीय मंत्री, उच्च शिक्षा, खेल व युवा कल्याण ने विश्वविद्यालय के शारदा सभागार में भारतीय विश्वविद्यालय संघ की प्रतिष्ठित सेंट्रल जोन की वाईस चांसलर मीट के शुभारंभ अवसर पर कही। उन्होंने तकनीकी और सूचना प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में हुए बदलाव पर ध्यान केंद्रित करते हुए कहा कि हमारी शिक्षा रोजगारपरक होनी चाहिए, हमें कौशल आधारित शिक्षा पर विशेष ध्यान देना चाहिए। उन्होंने कहा कि वी.सी. का मतलब विजनरी चेयर भी होता है आप सभी कुलपति भविष्य दृष्टा भी हैं जो विद्यार्थियों को भविष्य की राह दिखाते हैं। उन्होंने एज्युकेशन को एनर्जी, डिसिप्लिन, यूनिटी, कॉन्फिडेंस, ऐम, टैलेंट, इंटलेक्चुअल, अपार्चुनिटी और नेशनलिटी के रूप में परिभाषित किया।

इससे पूर्व रबिन्द्रनाथ टैगोर विश्वविद्यालय के कुलाधिपति संतोष चौबे ने स्वागत भाषण देते हुए संस्था की जानकारी प्रदान की। उन्होंने कहा कि हम शिक्षा, प्रशिक्षण और कौशल विकास के क्षेत्र में पिछले तीन दशकों से कार्य कर रहे हैं। उन्होंने अपने कार्यों को विस्तार से बताते हुए संस्था द्वारा स्थापित कीर्तिमानों और उपलब्धियों से अतिथियों को परिचित कराया। कुलपति प्रो. ए.के. ग्वाल ने इस दो दिवसीय आयोजन उद्देश्यों पर प्रकाश डाला। भारतीय विश्वविद्यालय संघ के उपाध्यक्ष श्री एम.एम. सालुंके और संघ के महासचिव श्री फुरकाम कमर ने भी सभी का स्वागत करते हुए भारतीय विश्वविद्यालय संघ के कार्यकलापों की जानकारी प्रदान की।

इस अवसर पर भारतीय विश्वविद्यालय संघ के न्यूज लेटर एआईयू न्यूज का विमोचन भी किया गया। इस न्यूज लेटर का संपादन भारतीय विश्वविद्यालय संघ की रमा देवीपाणी द्वारा किया गया। अतिथियों का स्वागत एवं स्मृति चिन्ह रबिन्द्रनाथ टैगोर विश्वविद्यालय के कुलसचिव विजय सिंह ने प्रदान किए। कार्यक्रम का संचालन डॉ. संगीता जौहरी और डॉ. संगीता पाठक द्वारा किया गया।

शुभारंभ सत्र के बाद दो तकनीकी सत्रों का आयोजन किया गया। प्रथम तकनीकी सत्र का विषय ग्लोबल एंड नेशनल रैंकिंग इन हायर एज्युकेशन था। जिसकी अध्यक्षता जाधवपुर विश्वविद्यालय के कुलपति प्रो. सुरंजन दास ने की। इस सत्र में कुलपति देवी अहिल्या विश्वविद्यालय इंदौर के प्रो. एन.के. धाकड़ और सीनियर एडवाइजर रबीन्द्रनाथ टैगोर विश्वविद्यालय प्रो. वी.के. वर्मा मुख्य वक्ता थे। दोपहर पश्चात के तकनीकी सत्र का विषय सीनेरियो ऑफ रिसर्च इन इंडियन यूनिवर्सिटीज इज रेटिंग एंड रैंकिंग ऑफ यूनिवर्सिटीज इनफ्लुएंसिंग देअर रिसर्च परफार्मेंस था। इसकी अध्यक्षता विक्रम विश्वविद्यालय के कुलपति प्रो.एस. एस. पांडे ने की। इस सत्र में बरकतुल्ला विश्वविद्यालय के कुलपति प्रो. आर.जे. राव और एम्स भोपाल के निदेशक डॉ. शरमन सिंह मुख्य वक्ता थे।

मध्यप्रदेश में यह पहला मौका है जब किसी निजी विश्वविद्यालय को इस आयोजन की जिम्मेदारी दी गई है। बैठक में सेंट्रल जोन (मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, उत्तर प्रदेश, उड़ीसा, महाराष्ट्र, तेलंगाना) के प्रतिष्ठित विश्वविद्यालयों से लगभग अस्सी कुलपति व शिक्षाविदों ने भाग लिया। बैठक का विषय ''बेंच मार्किंग एक्सीलेंस इन हायर एज्युकेशन-रैंकिग, रेटिंग एण्ड रिसर्च'' पर विभिन्न सत्रों में चर्चा हुई। सत्रों की अनुसंशाओं को भारतीय विश्वविद्यालय संघ की वार्षिक बैठक में प्रस्तुत किया जाएगा।

भारतीय विश्वविद्यालय संघ भारतीय विश्वविद्यालयों की शीर्ष संस्था है, जिसके अंतर्गत देश के केन्द्रीय, राज्य व निजी विश्वविद्यालय शामिल हैं। भारतीय विश्वविद्यालय संघ प्रतिवर्ष नार्थ, साउथ, ईस्ट, वेस्ट और सेंट्रल जोन के मीट का आयोजन करता है। जिसमें संबंधित जोन के उच्च शिक्षा से संबंधित चर्चाओं का आयोजन किया जाता है। विशेष रूप से जोन के विश्वविद्यालयीन प्रणाली एवं उच्च शिक्षा पर केन्द्रित किया जाता है। सभी जोन की अनुसंशाओं को भारतीय विश्वविद्यालय संघ की वार्षिक सामान्य बैठक में विचार-विमर्श के लिये प्रस्तुत किया जाता है।

एडवेंचर कैंप

रबिन्द्रनाथ टैगोर विश्वविद्यालय की नेशनल कैडेट कोर (एनसीसी) नवल विंग इकाई ने नव वर्ष की शुरुआत एडवेंचर कैंप से की। यह कैंप केरवा की पहाड़ियों पर आयोजित किया गया। इस कैंप में विश्वविद्यालय की एनसीसी नवल विंग के 35 कैडेट्स ने भाग लिया। इस दल का नेतृत्व विश्वविद्यालय के एनसीसी आफिसर सब लेफ्टिनेंट मनोज मनराल ने किया। दिन भर चले इस एडवेंचर कैंप में कैडेट्स ने कई साहसिक गतिविधियों में भाग लिया। जिसमें मुख्य रूप से रॉक क्लाइंबिंग, रैपलिंग, जिप-लाइन, ट्रैकिंग एवं जंगल भ्रमण था। कैंप के दौरान स्काई हिल एडवेंचर क्लब के हेड इंस्ट्रक्टर श्री ध्रुव बकोड़िया ने कैडेट्स को आपदा प्रबंधन तथा रॉक क्लाइंबिंग और रैपलिंग में काम आने वाले रोप नोट्स जैसे फिगर ऑफ एट, रीफ नॉट, क्लोव्हनॉट, बो लाइन, फिशरमैन नॉट आदि के गुर सिखाये। सब लेफ्टिनेंट मनोज मनराल ने बताया कि नये वर्ष की शुरुआत साहसिक गतिविधियों तथा जंगल भ्रमण कराने का मकसद कैडेट्स में आत्मविश्वास और उत्साह को बढ़ाने के साथ-साथ पर्यावरण संरक्षण को समझाना था।

अटल इन्क्यूबेशन सेंटर द्वारा बोनसाई पर कार्यशाला

रबिन्द्रनाथ टैगोर विश्वविद्यालय(आरएनटीयू) के अटल इन्क्यूबेशन सेंटर (एआईसी) द्वारा बोनसाई पर एक दिवसीय कार्यशाला का आयोजन किया गया। पद्मेश चतुर्वेदी बोनसाई विशेषज्ञ के रूप में उपस्थित थे। आपने बोनसाई पर विस्तार से प्रकाश डालते हुये बोनसाई पौधे का चयन किस प्रकार किया जाता है साथ ही पत्तियों और जड़ों की वायरिंग, शेपिंग, रिपोटिंग, प्रूनिंग तकनीकों को भी प्रदर्शित किया। उद्यमियों के लिये बोनसाई व्यापार के अवसरों पर विस्तार से जानकारी दी। उन्होंने स्मार्ट बोर्ड पर प्रेजेंटेशन के रूप में अपने विचारों को प्रस्तुत किया। कार्यक्रम की अध्यक्षता रबिन्द्रनाथ टैगोर विश्वविद्यालय के अटल इन्क्यूबेशन सेंटर के निदेशक नितिन वत्स और एआईसी-आरएनटीयू के सीईओ रोनाल्ड फर्नांडीज ने की। इस मौके पर नितिन वत्स ने कहा कि विश्वविद्यालय अटल इन्क्यूबेशन सेंटर के माध्यम से एन्टरप्रेन्योरशिप, इन्कयूबेशन एवं स्टार्टअप से संबंधित विषयों पर निरंतर कार्याक्रमों का आयोजन करता आ रहा है और भविष्य में भी उपयोगी कार्यशालाओं का आयोजन किया जाएगा। इस अवसर पर बड़ी संख्या में उद्यमी, विश्वविद्यालय के सेंटर ऑफ एक्सिलेंस के प्रमुख, डीन, एचओडी, ई-सेल सदस्यों और प्रतिभागी उपस्थित थे।

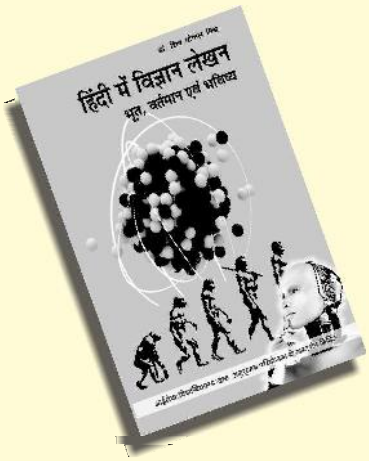

'हिन्दी में विज्ञान लेखन : भूत, वर्तमान एवं भविष्य'
लेखक : डॉ. शिवगोपाल मिश्र
प्रकाशक : आईसेक्ट विश्वविद्यालय
मूल्य : 200 रुपये

हिन्दी में विज्ञान लेखन की जटिलताओं पर जब हम विचार करते हैं तो पहले-पहल यह ध्यान आता है कि हिन्दी में विज्ञान की किताबें बहुत कम उपलब्ध हैं। अंग्रेजी में तो फिर भी विज्ञान लेखन होता रहा है। इससे मूल कारण पर विचार करते हुये हम पाते हैं कि अब भी हिन्दी में विज्ञान शब्दावली के विकास होने की आवश्यकता बनी हुई है। विज्ञान को समझने-समझाने के लिए हिन्दी विज्ञान लेखन के क्रमिक विकास का विहंगावलोकन आवश्यक है। वस्तुतः ऐसी ही सोच के कारण हिन्दी विज्ञान लेखन के भूत, वर्तमान तथा भविष्य विषयक यह पुस्तक गम्भीरता से विचार करके रोचक तरीके से लिखी गई है।

13 सितम्बर 1931 में जन्में इस किताब के लेखक शिवगोपाल मिश्र एम.एस-सी, डी.फिल, साहित्य रत्न में शिक्षित डॉ. मिश्र विज्ञान परिषद् प्रयाग इलाहाबाद के प्रधानमंत्री हैं। वे शीलाधर मृदा विज्ञान शोध संस्थान के निदेशक भी रहे। उन्होंने कई विज्ञान कोश व ग्रंथों की रचना की जिसमें हिन्दी में 26 तथा अंग्रेजी में 11 पुस्तकों सहित 5 पाठ्यपुस्तकें, नौ साहित्यिक पुस्तकें, महाकवि निराला पर तीन पुस्तकें उल्लेखनीय हैं। आपको आत्माराम पुरस्कार, भारत भूषण सम्मान आदि से विभूषित किया गया है।

प्रधानमंत्री कौशल केन्द्र में हुनरबाजों ने दिखाया अपना हुनर

हुनरबाज कार्यक्रम पर खेल एवं पुरस्कार वितरण समारोह संपन्न हुआ। राजनांदगांव-शहर के आईसेक्ट प्रधानमंत्री कौशल केन्द्र राजनांदगांव में खेल व पुरस्कार वितरण के साथ हुनरबाज कार्यक्रम संपन्न हुआ। कार्यक्रम में राजनांदगांव की डिप्टी कलेक्टर लता उर्वशा मुख्य अतिथि थे, कार्यक्रम में विशेष अतिथि के रूप में कविता कौशिक शर्मा समाजसेवी मैसूर कर्नाटक से और नितिन सर (मार्केटिंग मैनेजर आई.बी.सी. 24) से मौजूद थे। सभी अतिथियों ने मां सरस्वती के तैलचित्र पर पूजा अर्चना कर कार्यक्रम का शुभारंभ किया। तत्पश्चात अतिथियों का स्वागत सम्मान किया गया। कार्यक्रम को संबोधित करते हुए मुख्य अतिथि लता उर्वशा ने छात्र/छात्राओं को रचनात्मक कार्यो के लिये प्रोत्साहित किया। कविता कौशिक शर्मा ने अपने संबोधन में प्रेरणास्रोत गीत से प्रोत्साहित किया। साथ ही आईसेक्ट प्रधानमंत्री कौशल केन्द्र राजनांदगांव के रिजनल मैनेजर रूपेश देवांगन ने भी कार्यक्रम को संबोधित किया ।

कार्यक्रम में छात्र/छात्राओं द्वारा नृत्य व गीत भी प्रस्तुत किया गया। विभिन्न खेल कैरम, शतरंज, मोमबत्ती जलाओ, रंगोली, पेटिंग, क्विज, बिस्किट खाओ प्रतियोगिता हुआ जिसमें केशव, अजय, सेविता, गरिमा, जितेन्द्र, डिकेश, विपिन, धीरज, रोशन, टुमन आदि विजेता रहे। इस अवसर पर डॉटा एण्ट्री ऑपरेटर से विपिन और दामिनी, असिस्टेंट इलेक्ट्रीशियन से केशव और रजत, कम्प्यूटर हार्डवेयर(एफ.टी.सी.पी.) से फजल और संजय, पीजीडीसीए/डीसीए से अंकिता ओर नीतू को स्टूडेंट आफ द बैच के सम्मान से नवाज़ा गया। साथ ही डॉटा एण्ट्री ऑपरेटर के प्रथम बैच को बैच आफ द ईयर के सम्मान से तथा डाकेश्वर वर्मा, कृतिका मानिकपुरी और दामिनी सिंह को बेस्ट लीडरशिप के सम्मान से नवाज़ा गया। कार्यक्रम में रंजीत सिंह, दिव्या पिल्ले, कुलदीप साहू (डी.ई.ओ.ट्रेनर), लोकेश (कम्प्यूटर हार्डवेयर ट्रेनर), भूपेन्द्र मानिकपुरी(असिस्टेंट इलेक्ट्रीशियन ट्रेनर), दिव्या पिल्ले, प्रिया ठाकुर, विनय वर्मा, कमल साहू, हिरेन्द्र साहू आदि उपस्थित थे। कार्यक्रम का संचालन छात्रा अंकिता व उमा तथा आभार प्रदर्शन सौरभ शर्मा ने किया।

युवा महोत्सव

डॉ.सी.वी.रामन विश्वविद्यालय के विद्यार्थी एआईयू सेंट्रल जोन के इंटर यूनिवर्सिटी युवा महोत्सव में भाग लेने 6 जनवरी को रवाना हुए। इस वर्ष यह आयोजन संबलपुर विवि ओडिसा में 7 जनवरी से 11 जनवरी 2019 तक आयोजित किया गया है। उत्साह-उमंग और सब कुछ कर गुजरने का जज्बा लिए विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों व प्राध्यापकों की 40 सदस्यी टीम युवा उत्सव में भाग लिया। इस दौरान सीवीआरयू के विद्यार्थी देश के 30 विश्वविद्यालयों के विद्यार्थियों के बीच छत्तीसगढ़ की लोककला, संस्कृति सहित विभिन्न विषयों पर तैयार किए गए कार्यक्रमों की प्रस्तुति दी।

डॉ.सी.वी.रामन विवि में स्टेट बैक ऑफ इंडिया के अधिकारियों ने एसबीआई बैंकिंग एप योनो (YONO) की जानकारी दी। इस दौरान विवि के विद्यार्थियों और अधिकारी कर्मचारियों ने बैंकिग एप को समझा।

युवा जनकवि, लेखक और डायलॉग राईटर मंयक सक्सेना डॉ.सी.वी.रामन विवि के रेडियो रामन पहुंचे। उन्होंने युवा कवि, बदलते परिदृश्य में फिल्म और फिल्मी डायलॉग के बारे में विस्तार से चर्चा की। मयंक सक्सेना ने हाल में रिलीज हुई केजीएफ में डायलॉग लिखा है। वे और उनके साथी मोर्च पर कवि इवेंट को भी संचालित करते हैं।

डॉ.सी.वी.रामन विवि में गणित दिवस के अवसर पर एक दिवसीय कार्यशाला का आयोजन किया गया। जिसमें व्लयोर इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नॉलॉजी के प्राध्यापक प्रो। हेमंत कुमार नसीने और बिलासपुर साइंस कॉलेज के प्रो.जी.एस.साव ने शिरकत की। अतिथि वक्ताओं ने छात्र-छात्राओं को गणित को अनेक तरीके से विद्यार्थियों को समझाया। इस अवसर पर विवि के कुलपति प्रो.आर. पी.दुबे, कुलसचिव गौरव शुक्ला सहित सभी विभागों के विभागाध्यक्ष और छात्र-छात्राएं मौजूद थे।